तिरुक्कुरल-भावानुवाद

(जन-जन की भाषा में)

राजेन्द्र कुमार गुप्ता

तिरुक्कुरल-भावानुवाद

(जन-जन की भाषा में)

निवेदन

'तिरुक्कुरल' आदि कबीर कहे जाने वाले दक्षिण भारत के महान संत तिरुवल्लुवर के नीति वाक्यों का संग्रह है । संत तिरुवल्लुवर का काल इस्वी की प्रथम सदी रहा और उनके ये नीति वाक्य उस समय जब राजा राज्य किया करते थे, राजाओं द्वारा राज्य को सुचारू रूप से चलाने से संदर्भित थे, लेकिन वे आज भी उतने ही प्रासंगिक और सारगर्भित हैं । राजाओं के ही लिए नहीं अपितु साधारण जनमान्य के लिए भी ये उतने ही उपयोगी हैं ।

हिन्दू जीवन पद्धति के अनुसार मनुष्य के लिए धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष ये चार पुरुषार्थ सिद्ध करना उसके जीवन का लक्ष्य होता है । तिरुक्कुरल में धर्म, अर्थ और काम, इन तीनों पुरुषार्थों का विशद विवेचन किया गया है । इस ग्रन्थ का मुख्य सन्देश धर्मपूर्वक धन अर्जित कर उसके द्वारा अपनी इच्छाओं से उबर, चौथे पुरुषार्थ मोक्ष की और अग्रसर होना है ।

इस ग्रन्थ का अनेक भारतीय एवं विदेशी भाषाओं में अनुवाद हो चुका है और इस दृष्टि से एक और अनुवाद की कोई विशेष महत्ता ना होते हुए भी, इस विचार से कि इस ग्रन्थ के भावों को हिंदी पाठकों के

समक्ष सीधी, सरल और कवितामय भाषा में प्रस्तुत किया जाए, यह 'तिरुक्कुरल-भावानुवाद (जन जन की भाषा में)' आपकी सेवा में समर्पित है ।

इस अनुवाद में इन्टरनेट पर उपलब्ध अनुवादों से मुझे बहुत सहायता मिली और मैं हृदय की गहराइयों से अपने उन सभी पूर्ववर्ती लेखकों और अनुवादकों को धन्यवाद देता हूँ और उनका आभार प्रकट करता हूँ ।

निवेदक
राजेन्द्र कुमार गुप्ता

सम्पर्क सूत्र:

rkgupta51@yahoo.com
+91-9899666200
Website: www.sufisaints.net

तिरुक्कुरल-भावानुवाद

(जन-जन की भाषा में)

1. धर्म

1. प्रस्तावना

1. सर्वेश स्तुति
2. वर्षा वैशिष्टय
3. सन्यासी की महिमा
4. धर्म की सबलता

2. गृहस्थ धर्म

5. गृहस्थ जीवन
6. जीवनसंगिनी के गुण
7. सन्तान लाभ
8. स्नेह-भाव
9. अतिथि-सत्कार
10. मधुर भाषण
11. कृतज्ञता
12. मध्यस्थता
13. संयम
14. सदाचार
15. परस्त्री विमुखता
16. सहनशीलता

17. अनसूयता
18. निर्लोभता
19. अपिशुनता (चुगली न करना)
20. निरर्थकता-निषेध
21. कुकर्म भय
22. शिष्टाचार
23. दान
24. कीर्ति

3. सन्यास धर्म

25. दयालुता
26. निरामिषता
27. तप
28. मिथ्याचार
29. अस्तेय
30. सत्य
31. क्रोधहीनता
32. बुरा ना करना
33. अहिंसा
34. अनित्यता
35. सन्यास
36. तत्त्व-ज्ञान
37. तृष्णा का त्याग

4. भाग्य

38. भाग्य

2. अर्थ

1. शासन-विधान

39. राजा के गुण
40. शिक्षा
41. अशिक्षा
42. श्रवण
43. बुद्धिमत्ता
44. दोष निवारण
45. सत्संग लाभ
46. कुसंग-त्याग
47. सुविचारित-कर्म
48. शक्ति सीमा-बोध
49. समय-बोध
50. स्थान-बोध
51. सुविचारित चुनाव
52. विचारकर कार्य चुनना
53. बन्धुओं से लगाव
54. अविस्मरण
55. सुशासन
56. कुशासन
57. भयभीत ना करना
58. दयार्द्रता
59. गुप्तचर
60. उत्साह
61. आलस्यहीनता
62. उद्दमशीलता
63. अधीर ना होना

2. सामन्त

64. अमात्य
65. वाकपटुता
66. व्यवहार-शुद्धि
67. दृढ़ता से कर्म
68. कर्म करने की रीति
69. दूत
70. राजा के समक्ष व्यवहार
71. भावग्राह्यता
72. सभा में व्यवहार
73. सभा में निर्भीकता

3. दुर्ग

74. राज्य
75. दुर्ग

4. खाद्य

76. धन-उपार्जन

5. सैन्य

77. सैन्य सौष्ठव
78. सेना का शौर्य

6. मैत्री

79. मित्रता
80. मित्रता की परख
81. घनिष्ठ मैत्री
82. निकृष्ट मित्रता
83. झूठी मित्रता

84. मूढ़ता
85. तुच्छ बुद्धि
86. वैमनस्यता
87. शत्रु की पात्रता
88. शत्रु का बल-बोध
89. अन्त:वैर
90. बड़ों का अपमान
91. स्त्री-आधीनता
92. गणिका
93. मद्य निषेध
94. जुआ
95. औषधि

7. वंश

96. कुलीनता
97. सम्मान
98. महानता
99. सर्वगुण सम्पन्नता
100. शिष्टाचार
101. निष्फल-सम्पत्ति
102. लज्जाशीलता
103. परिवार पालन
104. कृषि
105. दरिद्रता
106. याचना
107. याचना करने से डरना
108. नीचता

3. काम

1. गुप्त प्रेम

109. सौन्दर्य आकर्षण
110. संकेत बोध
111. संयोग का आनन्द
112. सौन्दर्य की प्रशंसा
113. प्रेम की महिमा
114. लज्जा का त्याग
115. प्रवाद (अफवाह)

2. पातिव्रत्य

116. असह्य वियोग
117. विरहिणी का विलाप
118. वेदनापूर्ण नेत्र
119. व्यथा पीला पड़ने की
120. विरहाधिक्य
121. एकाकी-वेदना
122. स्वप्नावस्था
123. सान्ध्य-वेदना
124. सौन्दर्य-ह्रास
125. आत्म-संलाप
126. मान-भंग
127. उत्कंठा
128. संकेताभिव्यक्ति
129. आतुरता
130. रूठा मन

131. मान
132. मान की सूक्ष्मता
133. मान का आनन्द

तिरुक्कुरल-
भावानुवाद

(जन-जन की भाषा में)

1. धर्म

1.प्रस्तावना

1. सर्वेश स्तुति

जिस प्रकार से अक्षर-मालाएँ,
आधारित हैं सब आकार पर,
उसी प्रकार से सारी सृष्टि के,
मूल आधार हैं आदि सर्वेश्वर ।

सर्वेश्वर के श्रीचरणों की सेवा बिन,
व्यर्थ ही होता सब विद्यार्जन,
दीर्घायु होंगे उनके चरणों के उपासक,
सब हृदय-कमलों पर जिनका आसन ।

इच्छा, अनिच्छा से रहित सर्वेश के,
चरणों की शरण जो करते ग्रहण,
किसी भी प्रकार का कोई भी कष्ट,
बाधित नहीं करता उनका जीवन ।

सर्वेश्वर के सुयश का गुणगान,
करते रहते जो सदा प्रेम से,
बंधते नहीं वे अज्ञान-जनित,
भले-बुरे कर्मों के बन्धन से ।

इन्द्रिय-जन्य वासनाओं को त्याग,
सत्य-मार्ग का करते अनुगमन,
स्थायी सद्गति प्राप्त होती उन्हें,
ग्रहण कर प्रभु की चरण-शरण ।

मिट नहीं सकती मन की चिन्ता,
सर्वेश्वर के चरणों में पहुँचे बिना,
असम्भव है भवसागर से तर पाना,
प्रभु-चरणों की वन्दना किए बिना।

झुके ना शीश जो प्रभु-चरणों में,
वह तो बस अशक्त इन्द्रिय समान,
अष्ट-गुण युक्त सर्वेश्वर के चरणों में,
समर्पण बिना भव से नहीं परित्राण ।

2. वर्षा वैशिष्टय

संसार टिका है वर्षा पर,
सो वर्षा ही सुधा है जग की,
पैदा करती सब जीवों का भोजन,
और प्यास बुझाती वो उनकी ।

गर वर्षा न हो ऋतु आने पर,
तो भूख से तड़पेंगे सब जीव,
कर न पाएँगे खेती किसान,
अन्न को तरसेंगे सब जीव ।

बरसे ना तो कर दे नाश,
खूब बरस कर, कर दे उत्थान,
दोनों खूबियाँ वर्षा में हैं,
सूखा या हरा कर दे स्थान ।

बन्द कर दें बादल जो बरसना,
तो सूख सकते हैं सागर भी,
बन्द हो जाएगी देव-पूजा,
लुप्त हो जाएँगे दान आदि भी ।

जल के बिना संसार में,
चल ना सकेगा जीवन-व्यापार,
ये ही नहीं, वर्षा के बिना,
मिट जाएगा आचार-विचार ।

3. सन्यासी की महिमा

सदाचरण का दृढ़ पालन कर,
करते जो लोग सन्यास ग्रहण,
एक स्वर में कहते सब शास्त्र,
उनकी महिमा अति गहन ।

सम्भव नहीं किसी के लिए,
उनकी महिमा की गणना करना,
जैसे सम्भव नहीं किसी के लिए,
जग से कितने चले गए गिनना ।

जन्म और मुक्ति के सुख-दुःख को,
समझकर करना मुक्ति का प्रयास,
बढेगा मान संसार में उसका,
जो इस हेतु लेता है सन्यास ।

दृढ़तारूपी अंकुश से जो कर लेता,
पंचेन्द्रियरूपी हाथियों को वश में,
प्रस्फुटित कर लेता ऐसा व्यक्ति,
सर्वोतम लोक का बीज हृदय में ।

पंचेन्द्रियों पर पा ली विजय जिसने,
असीम शक्तियाँ हो जाती वश में,
इसका उदाहरण स्वयं इन्द्र हैं,
विशाल आकाश जिनके वश में ।

श्रेष्ठ हैं वे जो करें श्रेष्ठ कार्य,
जो उनमें सिद्ध नहीं, निम्न होते,
शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध,
इन गुणों के ज्ञाता, पूज्य होते ।

अमोध वचनों के स्वामी सन्यासी,
उनकी महिमा जगत में सिद्ध,
ऐसे सद्गुण-सम्पन्न साधु का,
क्रोध कर जाता सबको विद्ध ।

जो सब जीवों से करते हैं,
सदा प्रेमपूर्ण सद-व्यवहार,
रहते निरत सदा धर्म में,
सच्चे वे साधु दया-आगार ।

4. धर्म की सबलता

धन और यश सब देता धर्म,
सो भला धर्म से क्या उत्तम,
कुछ भी श्रेष्ठ नहीं धर्म से,
धर्म की विस्मृति अति अधम ।

धर्म को छोड़े बिना करना,
यथाशक्ति अपना सब कर्म,
अन्य कार्य सब मात्र आडम्बर,
मन की निर्मलता धर्म का मर्म ।

ईर्ष्या, लोभ, क्रोध, कटु वचन,
इन चारों से बचना है धर्म,
परलोक में भी यह देता साथ,
सो सदा निभाना चाहिए धर्म ।

धर्म-लाभ का क्या चाहिए प्रमाण,
धर्म का लाभ तो प्रत्यक्ष सबको,
जैसे पालकी पर सवार और कहार,
दोनों में अन्तर दिखता सबको ।

निरन्तर लगे रहना सत्कर्म में,
मुक्ति दिलाता जरा-मरण से,
यशहीन और दुखप्रद होते वे सुख,
जो उपजे ना हों धर्म-कर्म से ।

सत्कर्म ही बस ग्रहण करने योग्य,
सो मानव ग्रहण करे केवल सत्कर्म,
कुकर्म होते सब त्यागने योग्य,
सो त्याग दे मानव सब दुष्कर्म ।

2. गृहस्थ धर्म

5. गृहस्थ जीवन

गृहस्थ आश्रम ही सबका सहायक,
अन्य आश्रमियों को आश्रय देता,
साधु, निर्धन, निराश्रित और मृतक,
सबको आश्रय सद-गृहस्थ ही देता ।

पूर्वज, भगवान, अतिथि, बन्धु, स्वयं,
गृहस्थ का कर्तव्य इनके लिए कर्म,
नेक कमाई, औरों को खिलाकर खाना,
गृहस्थ का पतन से बचने का मर्म ।

स्नेह और धर्मयुक्त गृहस्थ जीवन,
वही उसका सौन्दर्य और सुफल होता,
क्या लाभ उसे अन्य आश्रम-धर्मों से,
सद-गृहस्थ श्रेष्ठ उन सबसे होता ।

औरों को धर्म-परायण बनाने वाला,
और स्वयं दृढ़ता से टिका धर्म पर,
तपस्वियों से भी महान ऐसा गृहस्थ,
खुद पेट पालता औरों का पालन कर ।

धर्म का पूर्ण-रूप है गृहस्थ जीवन,
दोष-रहित हो तो सोने पे सुहागा,
यथायोग्य धर्मपूर्ण जो जीवन जीता,
स्वर्ग के देवता समान बड़-भागा ।

6. जीवनसंगिनी के गुण

गार्हस्थ्य सद्‌गुणों से हो सम्पन्न,
और पति की आय में करे गुजारा,
सब व्यर्थ है इन गुणों के बिना,
सद्‌गृहणी को ये गुण ही सहारा ।

सद्‌गुण सम्पन्न हो अगर गृहिणी,
तो उस गृहस्थ को अभाव कैसा,
सुदृढ़ सतीत्व से युक्त स्त्री जो,
भला कौन महान उस स्त्री जैसा?

सबसे बढ़कर जो माने पति को,
उसके शब्द निरर्थक नहीं होते,
'बरसो' बस इतना कहने मात्र से,
रिमझिम मेघ बरसने लगते ।

अपने सतीत्व की रक्षा में तत्पर,
और पति के पोषण में संलग्न,
यथायोग्य संभाले रखे अपना सुयश,
जग में उस स्त्री का जीवन धन्य ।

घर की दीवारों तक सीमित रखना,
भला ऐसी मर्यादा किस काम की,
वास्तविक मर्यादा तो उसका सतीत्व,
सतीत्व ही पहचान भली स्त्रियों की ।

मन जीत ले जो अपने पति का,
सब खजाने देवलोक के सुलभ उसे,
पति का मान बढ़ाती वह स्त्री,
पति का यश प्रिय होता जिसे ।

गृहिणी के सद्‌गुण ही होते,
गृहस्थ जीवन की मांगलिक शोभा,
और अपने माता-पिता के लिए,
उनका सुपुत्र आभूषण सा होता ।

7. सन्तान लाभ

गृहस्थ के लिए नहीं कुछ और,
अपनी बुद्‌धिमान सन्तान से बढ़कर,
निष्कलंक, सच्चरित्र सन्तान दिलाती,
कुकर्म से छुटकारा सात जन्म तक ।

सन्तति सच्ची सम्पत्ति माँ-बाप की,
जो मिलती अपने कर्मों के अनुसार,
साधारण सी सेवा भी सन्तति द्‌वारा,
अमृत से आनन्द का होती भण्डार ।

कोमल स्पर्श और तोतली बोली,
तन और कानों को देती आनन्द,
सुनी ना अपने शिशु की तोतली वाणी,
बाँसुरी और वीणा उन्हें ही पसन्द ।

विद्‌वानों में सम्मान पाए पुत्र,
पिता का पुत्र पर यह बड़ा उपकार,
अपने से अधिक बुद्‌धिमान पुत्र हो,
हर पिता चाहता, हो स्वप्न साकार ।

पुत्र बुद्‌धिमान है सुनकर माता को,
उसे जन्म देने से अधिक सुख मिलता,
क्या तप किया होगा इसके पिता ने,
ऐसा कहें लोग, यह प्रत्युपकार पुत्र का ।

8. स्नेह-भाव

स्नेही की आँखों के अश्रु-बिन्दु,
उसके मन की बात प्रकट कर देते,
आँखों से उजागर मनोभाव हो जाते,
सांकल से जकड़कर रख नहीं सकते ।

जिनके मन होते शून्य स्नेह से,
वे सब चीजें अपने लिए ही मानते,
लेकिन जिनके मन परिपूर्ण प्रेम से,
वे तो तन भी औरों के लिए मानते ।

आत्मा का शरीर मे वास सफल,
स्नेह से ओत-प्रोत जीवन से होता,
पारस्परिक सहृदयता बढ़ाता स्नेह,
जिसका उत्कर्ष मित्रता में होता ।

आनन्द भरा जीवन जग में,
और आनन्द ही जीवन के बाद,
बुद्धिमान लोगों का कहना है,
स्नेहयुक्त जीवन की है सौगात ।

केवल धर्म का ही नहीं सहायक,
स्नेह वीरता का भी सहायक होता,
धूप सुखा देती अस्थिहीन जीव ज्यों,
धर्म स्नेहहीन जीव को सुखा देता ।

मरुस्थल में ठूँठ से निकली कोपलें,
स्नेहशुन्य जीवन भी उनके समान,
अन्त:करण में यदि स्नेह ना हो,
तो जीवित तन भी शव के समान ।

9. अतिथि-सत्कार

घर और गृहस्थी का मूल उद्धेश्य है,
अतिथि का सत्कार और परोपकार,
अतिथि को अकेले बाहर छोड़कर,
अन्दर रखा अमृत चखना अनाचार ।

यथोचित सत्कार अतिथि का करता,
दारिद्रय का वो बनता ना शिकार,
प्रसन्न मुख ऐसे गृहस्थ के घर में,
लक्ष्मी आनन्दित हो करती विहार ।

अतिथि को भरपेट खिला-पिलाकर,
संतुष्ट रहता जो बचा हुआ खाकर,
भरपूर अन्न उपजाते उसके खेत,
सुखी होता वो उत्तम खेती पाकर ।

घर आए अतिथि का सत्कार कर,
सहर्ष बाट जोहता नए अतिथि की,
स्वर्ग के देवता सदा उत्सुक रहते,
ऐसे गृहस्थ का आतिथ्य करने की ।

अतिथि का सत्कार अतिथि-यज्ञ,
कौन जान सकता महिमा उसकी,
अतिथि-यज्ञ के फल की श्रेष्ठता,
वैसी जैसी योग्यता अतिथि की ।

निरादर करता जो अतिथि का,
विकट काल में निराश्रित हो रहता,
बुद्धिहीन फँसते ऐसी विपत्तियों में,
धनाढ्य करें ना ऐसी मूढ़ता ।

जैसे अन्निचम[1] का मृदुल फूल,
मुरझा जाता बस सूँघने से,
ऐसे ही अतिथि का भी आनन्द,
उड़ जाता मात्र वक्र दृष्टि से ।

[1] अन्निचम-सबसे कोमल और हल्का पुष्प

10. मधुर भाषण

प्रेम भरे और निष्कपट शब्द,
निकलें जो तत्वज्ञों के मुख से,
शब्द वे ही वस्तुत: मधुर हैं,
भले और कल्याणकारी सबसे ।

अधिक श्रेष्ठ दयाद्र हो दान करने से,
प्रसन्न मुख से मधुर वचन कहना,
सीधे हृदय से निकले ऐसे वचन ही,
सज्जनों का धर्म, उनका गहना ।

दुखद दारिद्र्य से रहते वे दूर,
करते जो सम्भाष्ण मधुर वचनों का,
मधुर वचन ही उनके आभूषण होते,
सर्वत्र मान होता ऐसे लोगों का ।

शुभ्र वचन जो कहे चुन-चुनकर,
पापों से उसे मिलती मुक्ति
आनन्द तो मिलता ही वक्ता को,
पुण्यों में उसकी होती वृद्धि ।

कष्ट किसी को देने की,
नहीं होती जिसमे कोई चाह,
मृदु-भाषी वो दोनों लोक में,
पाता है आनन्द अथाह ।

मधुर वचन का मधुर फल,
मृदु-भाषी को जब मिले स्वयं,
फिर भला मृदु वचन छोड़,
क्यों करे कटु वचनों का चयन?

मधुर वचनों को त्यागकर जो,
कटु वचनों का करता प्रयोग,
पक्का-मीठा फल छोड़कर वो,
कच्चे कड़वे फल का करता भोग ।

11. कृतज्ञता

पूर्व उपकार के बदले बिना,
जो किसी पर करता उपकार,
भूलोक और देवलोक देने पर भी,
चुकता नहीं उस उपकार का भार ।

जब सहायता की अति आवश्यकता,
तब थोडा सा भी किया उपकार,
पूरे भूलोक की सम्पदा से भी,
बढ़कर होता वो उपकार ।

बिना विचारे स्वार्थ अपना,
जरूरतमंद की जो करता मदद,
मूल्य आंका जाय यदि उसका,
सागर से भी बढ़कर कीमत ।

तृणतुल्य भी चाहे हो उपकार,
लेकिन जो समझते फल उसका,
मानते उसे ताड़ के समान,
आभार मानते जीवनभर उसका ।

सीमित नहीं हो सकता प्रत्युपकार,
उपकृत की गुण-गरिमा पर वो निर्भर,
निर्दोष और आपद-बन्धु की मित्रता,
छोड़े न कभी कोई जीवन भर ।

स्मरण रखे सात जन्म तक,
किसी का किया थोड़ा भी उपकार,
सज्जन होता वह व्यक्ति जो,
तुरन्त ही भुला देता अपकार ।

बड़े-से-बड़े अपकार का विस्मरण,
उपकार याद कर तुरन्त कर देना,
पातकी के लिए प्रायश्चित संभव है,
पर कृतघ्न के लिए नहीं कोई कौना ।

12. मध्यस्थता

शत्रु, मित्र या चाहे कोई और हो,
समान दृष्टि से देखना सबको,
जिसका हक जैसा बनता हो,
न्यायोचित है वह हक देना उसको ।

न्यायनिष्ठ व्यक्ति की सम्पदा,
नष्ट न होती कभी बिना बात,
पीढ़ियों तक धन रहता अक्षुण्ण,
और संकट के समय देता साथ ।

त्यागने से निष्पक्षता यदि,
चाहे मिलता हो धन कितना भी,
किसी काम का नहीं वो धन,
करता ना किसी का भला कभी ।

पहचान किसी की सच्चाई की,
होती है उसकी सन्तानों से,
उत्थान-पतन तो होता रहता,
सच्चाई चमकती आभूषण जैसे ।

यदि निकल जाए सच्चाई हृदय से,
तो समझ लो होने वाला है पतन,
धर्म का अनुयायी, सच्चाई पर टिका,
दरिद्र होने पर भी उसको नमन ।

तराजु के ज्यों दोनों पलड़े बराबर,
ऐसे जो किसी ओर ना झुकता,
निष्पक्ष रहता आचरण में अपने,
आभूषण सी उसकी मन की समता ।

मन और वचन में जिसके,
लेशमात्र भी हो ना वक्रता,
स्पष्टवादिता सच्चाई का आधार,
और बातों में हो निष्कपटता ।

औरों के भी माल को जो,
माने जैसे खुद का सामान,
व्यापारी वही श्रेष्ठतम है,
जो सबका हित रखे ध्यान ।

13. संयम

देवत्व प्रदान करता संयम,
असंयम झोंक देता अन्धकार में,
अनमोल निधि होती संयम,
बहुत ऊँचा स्थान इसका जीवन में ।

संयम को ही तत्त्व-ज्ञान जान,
रखता संयम जो जीवन में,
वह संयम ऐसे व्यक्ति को,
सम्मान दिलाता ज्ञानीजनों में ।

रहकर अडिग निज धर्म पर,
संयम से जो जीवन जीता,
ऐसे संयमी व्यक्ति का सम्मान,
पर्वत से कहीं बढ़कर होता ।

विनम्रता सबके लिए भूषण,
विशेषकर धनवानों के लिए,
पंचेन्द्रियों पर जो संयम रखते,
निर्भीक सात जन्मों के लिए ।

सबसे जरूरी जिह्वा पर नियंत्रण,
अनुचित वचन स्वयं को दुःख देते,
दुर्वचन से यदि कोई आहत हो,
सारे पुण्य निष्फल हो रहते ।

अन्य चोटों का घाव भर जता,
पर दुर्वचनों का घाव कभी ना मिटता,
क्रोध-दमन यदि विद्वान कर लेता,
धर्म-देवता भी उसकी बाट जोहता ।

14. सदाचार

सदाचरण से मिलता यश सबको,
प्राणों से भी बढ़कर सदाचार,
विवेकशील व्यक्ति पीछे ना हटे,
सब विषमताओं में बचाता सदाचार ।

सदाचरण पहचान श्रेष्ठ कुल की,
दुराचरण प्रतीक निम्न जीवन का,
भूला पाठ फिर याद किया जा सकता,
पायी नहीं जा सकती खोई प्रतिष्ठा ।

फलता-फूलता नहीं ज्यों ईर्ष्यालु व्यक्ति,
वैसे ही आचरणहीन समृद्धि नहीं पाता,
सो दुराचरण के दोषों को समझकर,
कुलीन रखते ना बुरे कर्म से नाता ।

सदाचरण सुख की बुनियाद,
दुराचरण नीव रखता दुःख की,
सदाचरण का जो अनुपालन करते,
बात ना करते कभी मुँह से बुरी ।

चाहे पढ़ लें कोई कितने भी शास्त्र,
पर समाज में नहीं आचरण अच्छा,
अज्ञानी ही वे समझे जाएँगे,
कोई लाभ नहीं ऐसे शास्त्र पढ़ने का ।

15. परस्त्री विमुखता

धर्म और अर्थ के तत्त्व के ज्ञाता,
परस्त्री की कभी कामना नहीं करते,
अधर्मियों में सबसे अधिक मूढ़ वो,
परस्त्री के द्वार को रहते जो तकते ।

विश्वस्त मित्र की पत्नी के साथ,
करता जो नर कलुषित व्यवहार,
समझना चाहिए उसे मृत्यु का ग्रास,
इससे बड़ा ना कोई दुराचार ।

चाहे कोई कितना भी महान हो,
परस्त्रीगमन करता जो बिना विचारे,
सोचो क्या दशा होगी उसकी,
मरा हुआ वो, बिना मृत्यु के मारे ।

सुलभ समझकर परस्त्री को,
होता जो उस पर आसक्त,
पीछा ना छोड़ता कलंक उसका,
मन वासनाग्रस्त रहता हर वक्त ।

शत्रुता, पाप, भय और निंदा,
व्याभिचारियों को कभी नहीं छोड़ते,
मन शांत कभी नहीं रहता उनका,
अनेक शंकाओं से घिरे वो रहते ।

परस्त्री की जो करता ना कामना,
सद-गृहस्थ धार्मिक जाना जाता वो,
ताकता नहीं कभी परनारी को,
धर्म और शीलयुक्त माना जाता वो ।

रौद्र सागरों से उद्वेलित भूमि पर,
समस्त वैभवों का वो अधिकारी,
मन को अपने काबू में रखता,
आलिंगन में जो ना लेता परनारी ।

चाहे चले ना सदमार्ग पर,
चाहे करे ना कोई कुलीन-कर्म,
लेकिन परनारी की लालसा,
इससे बड़ा ना कोई अधर्म ।

16. सहनशीलता

जिस प्रकार सहन करती पृथ्वी,
उसे खोदने वालों का भार भी,
उसी प्रकार निंदकों को सहना,
प्रथम गुण होता सज्जनों का भी ।

सहनशीलता एक श्रेष्ठ गुण है,
उसका मान ना होना श्रेष्ठ उससे,
अतिथि तिरस्कार अति निकृष्ट,
मूढ़ों को सह लेना, महान सबसे ।

महानता की बुनियाद क्षमाशीलता,
क्षमाशील को मिलता साधुवाद,
प्रतिकारी को मान नहीं मिलता,
क्षमाशील स्वर्ण सा रहता याद ।

प्रतिकारी भले एक दिन खुश हो ले,
क्षमाशील की कीर्ति अनन्त काल,
अच्छा है किसी से बदला ना लेना,
धर्मोचित व्यवहार का रखना ख्याल ।

अहंकार वश अनुचित व्यवहार,
बेहतर जीतना उसे क्षमा-भाव से,
स्वयं में भी वह दोष आ जाता,
ऐसे लोगों का प्रतिकार करने से ।

अपशब्दों को सहन करने वाले,
निर्मल हृदय होते किसी यति से ।
उपवास व्रती महान होते हैं,
पर क्षमाशील श्रेष्ठ होते उनसे ।

17. अनसूयता[2]

ईर्ष्यारहित होने के गुण को,
समझना चाहिए मूल सदाचार का,
महान गुणों में अनसूयता से बढ़कर,
मूल्य नहीं किसी और गुण का ।

दूसरों की उन्नति से ईर्ष्या करना,
धर्म की हानि और अवनती करता,
पाप-कर्म से होती हानि को जान,
बुद्धिमान उसमें कभी न फँसता। ।

ईर्ष्या जो करे, क्या जरूरत शत्रु की,
ईर्ष्या ही उसको डूबाने के लिए काफी,
सहायतार्थ दिया धन देख जो जले,
परिवार सहित उसकी होती बर्बादी ।

ईर्ष्यावान से ईर्ष्या कर सौभाग्य,
खोल देता उस पर दुर्भाग्य का द्वार,
छीन लेता सब श्री-सम्पदा उससे,
और दुखों का लगा देता अंबार ।

[2] अनसूयता-ईर्ष्या ना होना

विचारने योग्य ईर्ष्यालु की उन्नति,
और अवनति सज्जन व्यक्ति की,
ईर्ष्यावान कभी समृद्ध नहीं होते,
सज्जनों की होती दुर्गति ना कभी ।

18. निर्लोभता

दूसरों की वस्तुओं का मन में लोभ,
कुल का नाश, दोषों को निमंत्रण देता,
शीलवान इसके कुपरिणाम समझ,
अनुचित मार्ग पर कभी नहीं चलता ।

क्षणिक आनन्द के लोभ में,
नित्य सुख के प्रेमी अधर्म ना करते,
ज्ञानी, निग्रही, घोर दारिद्रय में भी,
औरों के धन को कभी ना तकते ।

लौकिक ज्ञान या बुद्धिमता से,
क्या उपकार भला उसका होता,
अनुचित लोभ के वश में हो जो,
मूर्खतापूर्ण कार्यों में प्रवर्त होता ।

प्रभु कृपा-कांक्षी, धर्म का अनुयायी,
हुआ लोभ के वश तो नष्ट ही होगा,
क्यों करना लालच ऐसे धन का,
जिसको पा कभी कल्याण ना होगा?

जो कामना करता समृद्धि की,
औरों के धन का लोभ ना करता,
ऐसे धर्मज्ञ और निर्लोभी के पास,
सौभाग्य सदा खुद ही पहुँचता ।

बिना विचारे लोभ जो करता,
उसकी तो बस दुर्गति ही होती,
लोभहीनता के गुण से सम्पन्न,
जीवन में सफलता उसे ही मिलती ।

19. अपिशुनता[3]

चाहे धार्मिक वचन ना बोले,
चाहे करे धर्म के विरुद्ध काम,
लेकिन उनसे यह अच्छा कि,
कोई दे ना उसे 'चुगलखोर' नाम ।

पीठ पीछे करना निंदा किसी की,
लेकिन सामने हो तो झूठी प्रशंसा,
ऐसे चुगलखोर व्यक्ति से तो,
अधर्मी-वक्ता और दुष्कर्मी अच्छा ।

चुगलीखोर के झूठे जीवन से,
अच्छा दरिद्र रह मर मिटना,
पीठ पीछे बिना विचारे कहने से,
अच्छा सामने भला-बुरा कहना ।

[3] अपिशुनता-चुगली ना करना

चुगलखोरी सिद्ध करती है उनके,
हृदय में नहीं धर्म-धारण की क्षमता,
निंदक की निंदा दूसरे करेंगे,
जैसा बोया बीज, फल वैसा ही मिलता ।

मृदु वचन बोल, कर सकें ना मित्रता,
वंचित रहते मित्रों से इस कारण,
अपनों के भी दोष बखानते रहते,
गैरों संग क्या करेंगे, जानें भगवन ।

धर्म समझ सहन करती है पृथ्वी,
निंदकों का भार भी अपने ऊपर,
क्या दुःख उनको कोई हो सकता,
झाँकते दोष जो अपने ही भीतर?

20. निरर्थकता-निषेध

अप्रसन्न करता औरों को प्रलाप कर,
सम्मान ना मिलता ऐसे व्यक्ति को,
मित्रों का अप्रिय करे उससे भी तुच्छ,
लोगों के बीच व्यर्थ प्रलाप करता जो ।

बढ़ा-चढ़ाकर व्यर्थ की बातें करता,
बतलाता उसका नीति-विहीन होना,
करता रहता जो ऐसी बातें सभा में,
निश्चित उसके हित की हानि होना ।

कीर्ति और सम्मान घट जाता,
व्यर्थ प्रलाप करने वाले व्यक्ति का,
मानव कहलाने योग्य ना रहता,
लोग समझने लगते थोथा ।

अनुचित बातें कदाचित कह दे,
शीलवान पर करे ना प्रलाप,
विज्ञ निरर्थक बातें नहीं करते,
शोभती नहीं बातें बिना लाभ ।

21. कुकर्म से भय

उद्यत रहते जो सदा कुकर्म में,
डराता नहीं उन्हें उसका परिणाम,
केवल सज्जन ही डरते पाप से,
क्योंकि जानते वे उसका परिणाम ।

बुरा होता बुरे कर्मों का फल,
होता अग्नि से भी अधिक दाहक,
शत्रुओं को भी कष्ट ना देना,
ज्ञान सर्वश्रेष्ठ, ज्ञानियों का मत ।

भूलकर भी कोई करे ना ऐसा,
जिससे हो दूसरों का पतन,
यदि कोई ऐसा करता है तो,
स्वयं उसका ही होगा पतन ।

'मैं दरिद्र हूँ', ऐसा विचारकर,
अपनाना नहीं चाहिए मार्ग पाप का,
भले कुछ वक़्त मिल जाए ख़ुशी,
पर फिर मिलेगा दुःख दारिद्रय का ।

दुष्कर्म ना दुःख पहुँचाए बाद में,
तो करे दुखी ना किसी और को,
संभव है घोर शत्रु से बच जाना,
पर दुष्कर्म ना छोड़ेगा कभी उसको ।

परछाई सा पैरों के नीचे रहता,
पापकर्म का परिणाम पापी के,
सो जिसे चाहिए अपना भला,
लेशमात्र भी दुष्कर्म त्याग दे ।

वही पतन से बच सकता,
करता नहीं जो कभी दुष्कर्म,
अनुचित मार्ग कभी ना अपनाता,
नेक काम को समझता धर्म ।

22. शिष्टाचार

करते उपकार बरस कर बादल,
नहीं बदले की कुछ करते कामना,
क्या संसार उन्हें दे सकता,
सज्जनों की नहीं कोई चाहना ।

मेहनत से कमाया धन सज्जन,
करते उपयोग परोपकार में,
ऐसे शिष्टाचारियों की श्रेष्ठता,
सिद्ध इहलोक और परलोक में ।

शिष्टाचारी का जीना ही जीना,
शिष्टाचार बिना जीना मृत्यु सा,
जल भरे सरोवर सी उनकी जिन्दगी,
जो भरते रहते पात्र औरों का ।

मधुर फलों से लदा वृक्ष सा,
सम्पत्ति होना सज्जनों के पास,
लगा हुआ जो बीच नगर में,
प्रसन्न औरों की कर पूरी आस ।

सब तरह सबका उपकार करते,
दारिद्र्य में भी सब देने को तत्पर,
उनकी दरिद्रता तो बस इतनी सी,
कृतकृत्य हुए ना मनचाहा देकर ।

परोपकार में यदि सब लुट जाए,
तो भी सज्जन पीछे नहीं हटते,
यदि बेचना पड़े खुद को भी,
खुद बिककर प्रसन्न हो रहते ।

23. दान

इच्छित वस्तु निर्धन को देना,
उससे बड़ा ना कोई दान,
प्रतिफल पाने की इच्छा से देना,
वह तो सौदा है, नहीं दान ।

दान स्वर्ग का मार्ग खोलता,
फिर भी दान लेना अधम,
चाहे मोक्ष मिले ना मिले,
फिर भी दान देना उत्तम ।

मुँह से निकले उससे पहले,
इच्छित वस्तु दे देना श्रेष्ठ,
कुलीन व्यक्तियों में होता गुण,
तनिक संकोच नहीं देते भेंट ।

याचक जब तक प्रसन्न न हो,
देने वाले का आनन्द अधूरा,
यथाशक्ति संतुष्ट करे याचक को,
देने का व्रत तब होता पूरा ।

क्षुधा सहन करने की शक्ति से,
भूखे को भोजन पहुँचाना अच्छा,
उनकी क्षुधा शांत करने का प्रयास,
धनिकों का यही धन संचय सच्चा ।

औरों को बाँटकर खाने वाला,
कभी भूख की पीड़ा ना सहता,
मिलता क्या आनन्द देने में,
संचय कर खोनेवाला ना जानता ।

भीख माँगने से भी अधिक दुखदायी,
बस अपने ही पेट की चिंता करना,
भिक्षुक निराश हो दर से लौटे,
उससे बेहतर मरण दुःख सहना ।

24. कीर्ति

याचक को दान देने का यश,
इससे बढ़कर ना कुछ जीवन में,
करते हैं यश-गान लोग उसका ही,
जो किसी को देता कुछ जग में ।

केवल कीर्ति ही होती स्थायी,
युगों-युगों तक लोग स्मरण करते,
देवलोक में भी प्रशंसा पाते यशस्वी,
ज्ञानी भी जिसके लिए तरसते रहते ।

तन के ह्रास की कीमत पर भी,
यश की वृद्धि और उसका स्थायित्व,
कौन समझ सकता ज्ञानीजन के सिवा,
जीवन की नश्वरता, यश का महत्व ।

जीवन का मूल्य होता यश से,
वरना जीने का क्या लाभ भला,
यश ना मिले तो दोष स्वयं का,
औरों को क्यों कहे वो बुरा-भला?

यश अर्जित गर किया ना किसी ने,
जनमानस के बीच कलंक बन रहता,
उसका बोझ उठाने वाली भूमि पर,
बस काँटें और कंटक होते पैदा ।

निष्कलंक जीवन जो जी रहा,
जीवित जाना जाना बस उसका ही,
लेकिन कीर्ति हीन जीवन जो जीता,
उसका जीना तो मृत्युतुल्य ही ।

3. सन्यास धर्म

25. दयालुता

दया एक अति विशिष्ट सम्पत्ति,
धन तो क्षुद्रों के पास भी होता,
दयालुता ही होती सच्ची सहायक,
दयालु कभी नरकगामी नहीं होता ।

दया भाव से जीवों की सुरक्षा,
उनके कष्ट को अपना समझते,
पाप का भय उन्हें सताता नहीं,
ज्ञानीजन उनके लिए ये कहते ।

विशाल भूमि और विचरती वायु,
साक्षी हैं ये दोनों इस बात के,
दयालु लोग कष्ट नहीं पाते,
दुःख-दर्द उन्हें कभी ना सताते ।

पुरुषार्थहीन, जीवन लक्ष्य से भटके,
क्रूर, नीतिहीन कर्म करते बस वे ही,
निर्धन ज्यों लौकिक भोग ना पाता,
दयाहीन को सुलभ परलोक नहीं ।

संभव है निर्धन का कभी धनी होना,
पर निर्दयी का जीवन होता निष्फल,
निरर्थक होता निर्दयी का धर्म-कर्म,
जैसे अज्ञानी को तत्त्व-दर्शन का फल ।

निर्दय का व्यवहार निर्बल से,
होना चाहिए इस प्रकार का,
जैसे वो चाहता उसके साथ हो,
सबल से सामना हो जब उसका ।

26. निरामिषता[4]

अपने ही शरीर की वृद्धि के लिए,
करते जो और जीवों का भक्षण,
कैसे दयावान उन्हें कहा जा सकता,
जिह्वा के लिए जो हर लेते जीवन?

मिलता नहीं धनी होने का यश,
धन की रक्षा जो लोग ना करते,
वैसे ही दयावान होने का सम्मान,
भला मांसाहारी कैसे पा सकते?

विनाशकारी शस्त्रधारी के मन सा ही,
मांसाहारियों का मन सदय ना होता,
जीवों का मांस भक्षण ही अधर्म है,
अहिंसा ही दया और हिंसा निर्दयता ।

[4] निरामिषता-मांस ना खाना

निरामिषता आधार है जीवन का,
सो मांसाहारी नरक से छूट ना सकेंगे,
गर लोग त्याग दें सामिष[5] भोजन,
तो मांस विक्रेता मांस क्यों बेचेंगे?

मांस दूसरे जीव के तन का हिस्सा,
बुद्धिमान करेंगे ना भक्षण उसका,
सहस्त्रों हवन करने से बेहतर,
किसी जीवधारी के जीवन की रक्षा ।

जीवों के प्रति रखते दया भाव,
और मांस का सेवन ना करते,
सब जीव कृतज्ञता भरे भाव से,
हाथ जोड़कर उन्हें प्रणाम करते ।

27. तप

दुःख सहना और दुःख ना देना,
सच्चा स्वरूप यही तप का,
ऐसे आचरण वाले व्यक्ति को ही,
उचित तपस्वी का वेश धरना ।

भूल गए तप क्या गृहस्थ लोग,
तपस्वियों की सेवा करने के कारण,
तप से ही दमन दुखदायी शत्रु का,
और समृद्धि पाते मित्र-स्वजन ।

प्रयास से मिलती मनचाही वस्तु,
गृहस्थ भी कर सकते तप प्रयास से,
तप करना ही सच्चा कर्तव्य है,
इच्छाजनित कर्म तो व्यर्थ प्रयास से ।

तप-तपकर ज्यों स्वर्ण निखरता,
तपस्वी भी चमकता तत्वज्ञान से,
स्व-नियन्त्रण कर आत्मबोध पा,
वन्दित होता वो जग के जीवों से ।

सम्भव है सच्चे तपस्वी के लिए,
यम पर भी वो विजय पा ले,
जग में निर्धन हैं लोग अधिकतर,
क्योंकि कम हैं तपस्या करने वाले ।

28. मिथ्याचार

पञ्च तत्व जिनसे शरीर बना,
वे सब हँसते हैं मिथ्याचारी पर,
जान-बूझकर जो दोषों में फँसे,
क्या लाभ उसे तापस-वेश धर?

मिथ्याचारी का तपस्वी रूप धरना,
भेड़ का सिंह-चर्म ओढने जैसा,
झाड़ियों में छिप जाल बिछाकर,
पक्षी पकड़नेवाले चिड़ीमार जैसा ।

[5] सामिष-मांस युक्त

विरक्त बता खुद को, मिथ्याचार करे,
दुःख पाता और धिक्कारता खुद को,
मोह मुक्त नहीं पर त्यागी बने,
सबसे अधिक निर्दयी वो त्यागी तो ।

जंगली सेब[6] से सुंदर बाहर से,
पर भीतर से उसकी नौक से काले,
ऐसे व्यक्ति बहुतायत से जग में,
तीर्थाटन करते पर मलिन मन वाले ।

बहुत सुंदर दिखता बाण बाहर से,
पर कर्म अत्यंत निर्दयी होता उसका,
वीणा टेढ़ी पर मधुर स्वर देती,
आचरण करता भले-बुरे का फैसला ।

निन्दित हैं जो काम जगत में,
तज दे उनको अगर साधक,
केश मुँड़ाए या फिर जटा रखे,
इससे ऊपर उठ जाता साधक ।

29. अस्तेय[7]

गर तिरस्कार रहित जीवन की चाह,
तो मन में ना आए चोरी का विचार,
मन से चोरी करना भी चोरी सम,
चोरी से ना होता किसी का उपकार ।

चोरी और धोखे से मिला वैभव,
विकास ना कर विनाश ही करता,
ऐसा करने की तीव्र लालसा से,
समय आने पर दुःख ही मिलता ।

औरों का धन हड़पने की नीयत से,
लगे रहते जो अवसर की ताक में,
अभागा ही उन्हें समझना चाहिए,
दया और प्रेम नहीं उनके हृदय में ।

मितव्ययता के गुण से रहित वे,
अन्धकारपूर्ण, अमर्यादित जीवन जीते,
कपट भरा रहता मन में उनके,
पर सज्जन कभी धर्म से नहीं टलते ।

चोरी के सिवा कोई कौशल नहीं जिनमें,
नष्ट होंगे तभी उसी अमर्यादित कर्म से,
उनका अपना तन भी साथ ना देता,
और सच्चे धकेले जाते ना स्वर्ग से ।

30. सत्य

हानि ना हो किसी को जिससे,
सत्य बोलना उसे कहा जाता,
और दोषरहित कल्याण हो जिससे,
वो असत्य भी सत्य कहा जाता ।

---

[6] जंगली सेब-घुमची

[7] अस्तेय-चोरी ना करना

झूठ बोलना नहीं जान-बूझकर,
सामने आने पर जलाता हृदय को,
अपने ज्ञानानुसार मिथ्या ना बोलता,
ऐसा व्यक्ति प्रिय लगता सभी को ।

मन और वचन से सत्य आचरण,
श्रेष्ठ होता वो दानी-यतियों से,
मिथ्या-भाषण से रहित जीवन,
शोभित होता यश और धर्म से ।

पालन करना सदा सत्य का,
देता सब धर्मों का फल,
जल करता बाहर से शुद्धि,
भीतर से शुद्धि सच का फल ।

सत्य वचन रुपी दीपक ही,
बुद्धिमानों के लिए असली दीपक,
सत्य से अधिक कुछ श्रेष्ठ नहीं,
जग में दृष्टि जाए जहाँ तक ।

31. क्रोधहीनता

बचना निर्बल पर क्रोध करने से,
वही वास्तव में संयम का रखना,
सबल पर क्रोध करो ना करो,
वहाँ क्रोध से क्या बनना-बिगड़ना?

जहाँ क्रोध से बने ना बात,
वहाँ क्रोध करना है अनुचित
जहाँ क्रोध से बात बन सकती,
वहाँ तो क्रोध और भी अनुचित ।

क्रोध बुरे कर्मों का कारक,
जिससे बढ़कर कोई शत्रु नहीं,
मार डालता क्रोध करने वाले को,
गर क्रोध को वश में किया नहीं ।

क्रोध की अग्नि भस्म कर देती,
बन्धु-बान्धवों की आनन्द नौका भी,
क्रोध करने में जो भलाई देखते,
क्रोध चोट पहुँचाता खुद उनको भी ।

घोर अनिष्ट करने वाले पर भी,
हो सके तो क्रोध ना करना अच्छा,
गर मन में क्रोध का वास ना हो,
पा सकता है वो जो करे इच्छा ।

क्रोध के वश रहते जो लोग,
उनका जीवन तो मृतक समान,
लेकिन वश में जो क्रोध कर लेते,
वे होते मुक्त पुरुषों के समान ।

32. बुरा ना करना

चाहे महान यश मिल सकता हो,
बुराई से बचना, सज्जनों का काम,
बुराई के बदले भी बुराई ना करते,
निष्कलंक जन दे देते क्षमा दान ।

अपार दुःख देता बुरा करना,
चाहे करी किसी ने अकारण बुराई,
उसका उचित दण्ड लज्जित हो वो,
भूल जाना उसकी करके भलाई ।

औरों का दुःख अपना सा मानकर,
रक्षा ना की तो क्या लाभ ज्ञान का,
जानता जिसे है बुरा कर्म वह,
मन में भी क्यों आए उसे करने का?

मन में उत्पन्न कुत्सित विचारों को,
अच्छा है मन में ही दबा लिया जाए,
समझता जिसे अपने लिए अहितकर,
क्यों दूसरों संग वैसा किया जाए?

बहुत शीघ्र फल बुराई का मिलता,
सुबह का किया भुगतता शाम को,
दुःख देने वाला दुःख पाता स्वयं ही,
सुखी जीवन चाहे वो करे ऐसा क्यों?

33. अहिंसा

अहिंसा ही है सच्चा धर्म-कर्म,
हिंसा में शामिल होते सब अधर्म,
खुद खाना औरों को बाँट कर,
शास्त्रकारों के मत में श्रेष्ठ धर्म ।

सब धर्मों में सर्वोपरि अहिंसा,
असत्य न बोलना उसके बाद,
जीव हिंसा का निषेध जिसमें हो,
वही धर्म का मार्ग सुमार्ग ।

जीवन से भाग सन्यास ले लेना,
उनसे श्रेष्ठ वो जो हिंसा से डरता,
जीवन को हरने वाला काल भी,
जीवन-रक्षक के व्रत से सकुचाता ।

अपने प्राणों की कीमत पर भी,
हरने नहीं चाहिए किसी के प्राण,
चाहे कितना भी लाभ क्यों ना हो,
तुच्छ ही समझेंगे उसे बुद्धिमान ।

निकृष्ट जानते जो प्राणी-वध को,
उनकी नजरों में नीच वधिक जन,
करते जो हिंसा का घोर पाप,
दुःखदायी होता उनका भावी जीवन ।

34. अनित्यता

तुच्छ बुद्धि की पराकाष्ठा है,
अनित्य वस्तुओं को नित्य मानना,
आना-जाना धन सम्पत्ति का,
तमाशाई भीड़ का मानों आना-जाना ।

धन-एश्वर्य कभी स्थायी नही होता,
टिकता नहीं लम्बा किसी के पास,
सो तुरंत शुभ-कर्म पूरे कर लो,
फिर मौका मिलेगा, क्या विश्वास?

काल आरी सम चीर रहा,
आयु को निरंतर दिन और रात,
हिचकी आए और जीभ बंद हो,
शुभ कर्म करो यथाशीघ्र समाप्त ।

इस जग की ऐसी महानता,
बदल रहा यह पल-पल में,
कल जो था वो आज नहीं,
बुद्धिहीन लगे उधेड़बुन में ।

पंख निकलने पर पंछी ज्यों,
उड़ जाता अपना खोल छोडकर,
वैसे ही प्राण-पखेरू उड़ जाते,
इस तन को अकेला छोडकर ।

निद्रा-जागरण सा जन्म-मरण,
आत्मा का स्थायी ना कोई निवास,
कुछ दिन बसते प्राण देह में,
किराएदार सा प्राणों का वास ।

35. सन्यास

मिट जाती आसक्ति जिस वस्तु में,
दुःख नहीं होता फिर उससे उसे,
सुख चाहे तो आसक्ति त्याग कर,
जीते-जी यहीं पर रहे सुख से ।

इन्द्रियजनित वासनाओं का संहार,
और उनकी प्रेरक वस्तुओं का परित्याग,
सब बन्धनों से मुक्त हो जाना,
तापस का नहीं किसी में अनुराग ।

और बन्धनों की तो बात ही क्या,
जन्म-मरण स्वयं में सबसे बड़ा,
'मैं' और 'मेरा' का अहंकार मिट जाए,
उसका पद देवताओं से भी बड़ा ।

बंधे हुए जो विविध बन्धनों में,
जकड़े रहेंगे उन्हें दुःख जीवन भर,
पर पूर्णतया जो संन्यास ले लेते,
मुक्त हो जाते वे ज्ञान ग्रहण कर ।

जब तक मुक्त ना होता बन्धन से,
जन्म-मरण उसका होता रहता,
लेकिन ईश्वर से बंध जाने पर,
फिर शेष ना कोई बन्धन रहता ।

36. तत्व-ज्ञान

अनित्य वस्तुओं को नित्य मानना,
बनता जन्म-मरण का कारण,
लेकिन जब हो जाता तत्वज्ञान,
स्थायी आनन्द का होता आगमन ।

भ्रम मिट जिन्हें तत्वज्ञान हो जाता,
पृथ्वी से निकट होता स्वर्ग उन्हें,
तत्वज्ञान बिन इन्द्रियजनित ज्ञान,
कुछ लाभ न मिलता उससे उन्हें ।

वस्तु के यथार्थ रूप की समझ,
उसे ही कहा जाता तत्वज्ञान,
भलीभांति तत्वज्ञान अर्जित कर,
ज्ञानी पा जाता भव से निदान ।

मन में मनन से उपजा ज्ञान,
मुक्ति दे देता जन्म-मरण से,
अज्ञान आधार जो भवपीड़ा का,
मिट जाता वो आत्मज्ञान से ।

काम, क्रोध और मोह ये तीनों,
जब लेश मात्र भी बचे ना रहते,
ऐसी निर्विकार स्तिथि मन की,
जब हो रहती, मुक्त हो रहते ।

37. तृष्णा का त्याग

तृष्णा वो बीज है जो जीवों को,
डाले रहता निरन्तर जन्म-मरण में,
गर इच्छा कोई मन में रखनी हो,
तो इच्छा बस यही, पुन: ना जन्में ।

तृष्णा मिट जाना सर्वश्रेष्ठ सम्पत्ति,
कहीं भी नहीं कुछ उसके जैसा,
इच्छा ना होना कहलाती पवित्रता,
सत्य से प्रेम, मन पवित्र कर देता ।

जिनके मन में तनिक ना तृष्णा,
वे ही व्यक्ति मुक्त कहे जाते,
धर्म है तृष्णा से डर के रहना,
तृष्णा खोलती छल के रस्ते ।

तृष्णा का पूर्ण दमन होने पर,
स्वत: सिद्ध हो जाता मुक्ति-मार्ग,
सब सुख सुलभ ऐसे व्यक्ति को,
तृष्णा ले जाती दुःख के मार्ग ।

सबसे बड़ा दुःख तृष्णा है,
तृष्णा ना हो तो सुख सब ओर,
सदा अतृप्त अग्नि सी तृष्णा,
जिसका दमन जरूरी पुरजोर ।

4. भाग्य

38. भाग्य

परिश्रम की प्रेरणा सौभाग्य से मिलती,
आलस्य की जब धन-हानि होनी हो,
खोने का संयोग बनाता मन्दबुद्धि,
तीव्र बुद्धि जब धन मिलना हो ।

अनेक शास्त्र पढ़ने पर भी,
भाग्यानुकूल बुद्धि रहती प्रधान,
संसार का स्वभाव भाग्य के अनुसार,
सम्पत्ति सम्पन्नता या खोजे सद्ज्ञान ।

धन संग्रह का प्रयास भाग्यवश,
सद, असद का भेद भुलवाता,
भाग्य ना हो तो कुछ नहीं मिलता,
भाग्य में हो तो फेंक नहीं पाता ।

चाहे पास में हो कितना भी,
भाग्य ना हो तो भोग ना पाते,
अगर ना हो विश्वास भाग्य पर,
सब अभागे सन्यासी बन जाते ।

सौभाग्य में आनन्द मनाने वाले,
क्यों दुखी हों जब बुरा वक्त हो,
भाग्य से बढ़कर भला क्या शक्ति,
सब सम्भव जब भाग्य प्रबल हो ।

2. अर्थ

1. शासन-विधान

39. राजा के गुण

सेना, प्रजा, धन, मंत्री, मित्र और दुर्ग,
जिसके पास, नर-सिंह सम वो राजा,
निर्भयता, दान, बुद्धिमता और उत्साह,
चारों की पूर्णता चाहता रहता राजा ।

सतर्कता, विद्या और वीरता,
राजा के ये तीनों अभिन्न गुण,
अधर्म ना होने दे कहीं राज्य में,
अपनी कीर्ति को रखे अक्षुण्ण ।

धन उपार्जन, वृद्धि और रक्षा,
और कुशलता धन के वितरण में,
दर्शन सुलभ, कटु वचन ना बोले,
प्रशंसित होता वह राजा लोक में ।

नीति अनुसार प्रजा की रक्षा,
समझते उसे भगवान सम लोग,
अपनी आलोचना को जो सह ले,
उसकी छत्र-छाया में पलते लोग ।

दान, दया, नीति, प्रजा-संरक्षण,
ये सद्गुण हों जिस राजा में,
राजाओं में सम्मानित होता,
प्रजा के प्राण बसते उसमें ।

40. शिक्षा

पठन योग्य विद्याओं का अर्जन,
और उनको अपने व्यवहार में लाना,
अंक और अक्षर रुपी नेत्रों को,
उचित है सब लोगों को अपनाना ।

आँखे होने का सुफल यही है,
कि शिक्षित करें लोग स्वयं को,
विद्वान होने का यही प्रमाण है,
सोचें लोग कब दर्शन हों उनको?

निर्धन होने पर भी श्रेष्ठ है शिक्षित,
अशिक्षित का ना उतना सम्मान,
गहरे कुँए में ज्यों जल ज्यादा,
जितनी शिक्षा उतना बुद्धिमान ।

शिक्षित के लिए बन जाते हैं,
सभी देश और नगर अपने,
सो क्यों ना शिक्षा ग्रहण करें,
पूरे क्यों ना करें अपने सपने?

सात जन्मों तक सहायक होता,
स्वाध्याय से अर्जित किया ज्ञान,
खुद को और औरों को आनन्द दे,
ज्ञान अर्जित करते रहते बुद्धिमान ।

और सम्पतियाँ नष्ट हो सकती,
पर विद्या ना छोडती साथ कभी,
सब सम्पत्तियों में श्रेष्ठतम विद्या,
जिसका ना होता ह्रास कभी ।

41. अशिक्षा

सद्ग्रंथों का अध्ययन किए बिना,
विद्वत-सभा में मुँह खोलना,
जैसे नियमों को समझे बिना,
जुए में सम्पत्ति को झोकना ।

समुचित शिक्षा तो पायी नहीं,
पर चाह सभा में भाषण की,
जैसे स्त्रियोचित गुणों के बिना,
स्त्री अभिलाषा करे प्रेम की ।

विद्वानों के समक्ष मौन धारण,
अशिक्षित को भी दिलाता मान,
अति श्रेष्ठ बुद्धि होने पर भी,
अशिक्षित नहीं पाता उतना मान ।

विद्वानों के समक्ष आने पर,
दम्भ अशिक्षित का नहीं टिकता,
निष्प्रयोजन ऊसर भूमि के समान,
शिक्षविहीन से कुछ ना पनपता ।

बुद्धिविहीन का रूप-लावण्य,
बस मिट्टी की सुन्दर गुडिया सा,
मूढों की सम्पत्ति इतना दुःख देती,
जितना नहीं देती शिक्षितों की दरिद्रता ।

उच्च कुल में जन्में अपढ़ से अधिक,
निम्न कुल जन्मा विद्वान यश पाता,
ज्यों पशु की मानव से तुलना में,
मानव को ही श्रेष्ठ पाया जाता ।

42. श्रवण

ज्ञान ग्रहण किया जो कानों से,
सब सम्पतियों में सबसे महान,
जब कान ज्ञान रस पी ना रहे,
तब मिले पेट को भोजन-दान ।

ज्ञान श्रवण कर तृप्त हो रहे,
हवि-भोजी देवों सम वे सम्मानित,
विद्वानों के वचनों को सुनना,
क्लांत दशा में करता उत्साहित ।

सज्जनों के मुख से निकले शब्द,
हाथ में छड़ी सा फिसलने से बचाते,
ज्ञान से भरे अल्प शब्द भी,
समय आने पर बड़ा मान बढाते ।

सावधानी से सुन संचित किया ज्ञान,
भ्रमित होने पर भी जड़ता ना कराता,
बेधित हुए ना जो कान ज्ञान सुन,
उनका होना बस दर्शन मात्र का ।

सूक्ष्म ज्ञान को सुनने से,
रह गए वंचित जिनके कान,
कैसे आशा की जा सकती,
कि बोलेंगे वो मधुर जबान?

श्रवण रसपान किया ना जिसने,
बस जिह्वा से ही स्वाद चखा,
क्या हर्ष या विषाद हो सकता,
चाहे जीवित हो वो, चाहे मरा?

43. बुद्धिमत्ता

विध्वंस से रक्षा करती बुद्धि,
शत्रुओं के विरुद्ध सुदृढ़ दुर्ग सी,
मन को भटकने से भी रोकती,
अशुभ छोड़ राह दिखाती शुभ की ।

सुने हुए को जाँच-परखकर,
सत्य निरखना काम बुद्धि का,
खुद की बात सरलता से कहना,
औरों की समझना, काम बुद्धि का ।

उत्तम लोगों से मैत्री कर निभाना,
ना कमल सा कभी खिलना बंद होना,
लोकाचार के उपयुक्त आचरण,
प्रकट करता उत्तम बुद्धि का होना ।

बुद्धिमानों को होता होनी का ज्ञान,
जो नहीं जानते, बुद्धिमान नहीं वो,
जिससे डरना ना चाहिए, डरते नहीं,
जिससे डरना चाहिए, डरते हैं वो ।

भावी से बचने का यत्न कर,
खुद की रक्षा करते बुद्धिमान,
सब कुछ होते बुद्धिहीन विपन्न,
पर सब धन से सम्पन्न प्रज्ञावान ।

44. दोष निवारण

जिनमें अभिमान, क्रोध, वासना नहीं,
पाते जाएँगे अधिकाधिक वैभव वो,
दानहीनता, व्यर्थ मान, क्षुद्र आनन्द,
शासक के लिए हितकारी नहीं वो ।

निंदा के भय से जो डरते रहते,
बड़ा समझते अपना तनिक भी दोष,
अपमान और नाश शत्रु सा करता,
छोड़ो ना स्वयं में जरा भी दोष ।

दोष घर करे उससे पहले बचना,
भूसे को अग्नि सा जला देता दोष,
शासक निज दोष निवृति के बाद,
यदि दोषान्वेषण करे तो कैसा दोष?

उचित होने पर भी करता ना खर्च,
उसका धन नाश हो व्यर्थ ही जाता,
ऐसे लोभी की धन में आसक्ति,
किस दोष सम उसे कहा जा सकता?

अति श्रेष्ठ समझकर स्वयं को,
करना ना चाहिए कभी अभिमान,
ना ही चाहिए किसी को करना,
बिना प्रयोजन कभी कोई काम ।

यदि किसी पर प्रकट किए बिना,
राजा करता अपना मनचाहा काम,
ऐसा नीतिज्ञ, सतर्कता बरतने वाला,
करता शत्रुओं का षड्यंत्र नाकाम ।

45. सत्संग लाभ

धर्मज्ञ और ज्ञानी लोगों से मित्रता,
श्रेयस्कर और अति उत्तम काम,
आगत और भावी दुःख से बचाते,
ऐसे श्रेष्ठ लोगों का साथ अविराम ।

दुर्लभ से भी दुर्लभ पदार्थ है,
श्रेष्ठ लोगों को अपना बना लेना,
और सब शक्तियों में महान है,
ऐसे लोगों का आत्मीय बन रहना ।

राजा के नेत्रों से होते हैं मंत्री,
सो करे उनका वो चुनाव ध्यान से,
योग्य और श्रेष्ठ लोगों का साथ,
बचा लेता राजा को रिपुओं से ।

सुधार दृष्टि से दोष बताने वाले,
मित्रों की बात अगर राजा माने,
शत्रु उसका क्या अहित कर सकता,
जो राजा अपने दोषों को जाने?

इंगित करने वाले दोषों को,
मित्र ना हों यदि राजा के पास,
शत्रु ना हों तो भी राजा का,
निश्चित है दोषों के कारण नाश ।

लाभ के लिए ज्यों मूलधन जरूरी,
सबल सहायक स्थिरता के लिए,
अनेक शत्रु पालने से अधिक हानिकर,
शुभचिंतकों का त्याग राजा के लिए ।

46. कुसंग-त्याग

कुसंगियों से दूर रहती उत्तमता,
नीचता कुसंग को बन्धु मानती,
भूमि के गुण जल में आ जाते,
ऐसे ही जैसा संग, बुद्धि वैसी ।

मन ग्रहण करता अनुभव को,
पर संगती बदल देती स्वभाव,
बुद्धि लगता उपज है मन की,
पर संगती का मिटता ना प्रभाव ।

मन और कर्म दोनों की शुद्धता,
निर्भर करती संग की शुद्धता पर,
कीर्ति अमर रहती सुसंग वालों की,
कुछ अशुभ ना करते वे जीवन भर ।

ऐश्वर्य मिलता मन की शुद्धता से,
सज्जनों के संग से यश मिलता,
मन पूर्ण पवित्र होने पर भी,
विशेष शक्ति देती संग की शुद्धता ।

स्वर्ग सा आनन्द देती चित्त-शुद्धि,
सुसंग उसमें और वृद्धि कर देता,
कुछ और नहीं सुसंग से बढ़कर,
कुसंग से बढ़ कोई अहित ना करता ।

47. सुविचारित-कर्म

प्राप्त होने वाले लाभ को परख,
धन और माल की हानि विचार,
होना चाहिए किसी कर्म में प्रवर्त,
मनुष्य को भलीभाँति सोच-विचार ।

अपने परिजनों से परामर्श कर,
प्रारम्भ करते जो किसी काम का,
कुछ भी असम्भव नहीं उनके लिए,
परिचय देते जो सूझ-बूझ का ।

अधिक लाभ के लोभ में फँस,
मूलधन भी जो गँवा देते,
रहते ना वो कहीं के भी,
बुद्धिमान ऐसा कभी ना करते ।

भयभीत जो होते अपयश से,
प्रारम्भ ना करते ऐसा कोई काम,
भरोसा ना जिसमें लाभ होने का,
ना यश में वृद्धि करे जो काम ।

परिस्थितियों का मूल्यांकन किए बिना,
शत्रु पर आक्रमण बस निरी मूर्खता,
उचित कार्य में अनुचित ढील,
अधोगति पाने की करना शीघ्रता ।

सोच-विचारकर उद्यत हो कर्म में,
शुरू करने के बाद सोच किस काम की,
उचित उपाय बिन मिलती ना सफलता,
लोगों की मदद भी व्यर्थ हो रहती ।

समझे बिना स्वभाव किसी का,
चाहे करो तुम उसके अनुकूल,
कितना भी भला तुम करना चाहो,
सम्भव है वो समझे प्रतिकूल ।

भली प्रकार से सोच-विचारकर,
करना चाहिए लोकानुकूल कर्म,
क्योंकि लोक अंगीकार नहीं करता,
जिसे समझता वो प्रतिकूल कर्म ।

48. शक्ति सीमा-बोध

कार्य का उद्देश्य और साध्य,
अपना बल और शत्रु का बल,
दोनों के सहायकों की शक्ति भी,
जो विचारता वो होता सफल ।

अपना कर्त्तव्य और आवश्यक बल,
सोच विचारकर जो भली प्रकार से,
दत्तचित्त होकर कर्त्तव्यरत होता,
कुछ भी असम्भव होता ना उसे ।

अपने बल की सीमा ना जान,
आवेशवश शुरू कर देते जो काम,
बीच में ही छोड़ना पड़ता उसे उनको,
अवनति का कारण बनता वो काम ।

अपनी साधन-शक्ति से अनभिज्ञ,
और अपने बल पर झूठा अभिमान,
मिलकर चलते ना जो लोगों से,
शीघ्र नाश होना उनका जान ।

सीमा से अधिक लदे मयूर-पंख भी,
तोड़ देते ज्यों गाड़ी की धुरी को,
वैसे ही जोश में हद से आगे बढ़ना,
निमन्त्रण देना है खुद के नाश को ।

दान करना अपने सामर्थ्य अनुसार,
अपनी सम्पत्ति की उचित साज-संभाल,
आय अगर सीमित भी हो तो भी,
सोच समझकर व्यय करता निहाल ।

धन की सीमा समझे बिना जो,
सम्पन्न समझ व्यय करता रहता,
शनैः-शनैः खाली हो जाता भण्डार,
रह जाता वो बस हाथों को मलता ।

49. समय-बोध

सबल होने पर भी दिन के समय,
उलूक दुर्बल कौए से जाता हार,
ऐसे ही शत्रु पर विजय पाने को,
राजा करे तदानुकूल समय विचार ।

सौभाग्य बाँध रखने वाली रस्सी सा,
समय के अनुसार काम में लगना,
उचित उपाय यदि अपनाए जाएँ,
असम्भव भला किस काम का करना?

समस्त भूलोक भी पाया जा सकता,
प्रयास से, समय और स्थान विचार,
अनुकूल समय की प्रतीक्षा करते,
जग जीतने का जिनका होता विचार ।

उत्साही का समय देख सिमटना,
भेड़ का लड़ाई में पीछे हटने सा,
बुद्धिमान क्रोध सहेजकर रखते,
उचित समय की करते प्रतीक्षा ।

यदि समय की हो ऐसी माँग,
बुरा नहीं शत्रु के आगे झुकना,
ठीक समय जब आएगा,
निश्चित शत्रु का तब सिर कटना ।

आ खड़ा हो यदि दुर्लभ अवसर,
दुष्कर कार्य तुरन्त कर डालो,
शांत रहो नजाकत समझ वक्त की,
उचित समय तब शत्रु को रौंद डालो ।

50. स्थान-बोध

व्यूह रचने का उचित स्थल,
जब तक ना मिल जाता राजा को,
होना ना चाहिए युद्ध में प्रवर्त,
ना शत्रु को क्षुद्र समझना राजा को ।

शक्तिशाली होने पर भी सुदृढ़ दुर्ग,
सहायक होता युद्धरत राजा को,
स्थल को जान, अपनी रक्षा करते,
लड़े तो विजय मिले राजा को ।

आगे बढ़ अनुकूल स्थल पहचान,
दृढ़ता से युद्ध में जो प्रवर्त होता,
कठिन उस राजा पर विजय पाना,
शत्रु राजा को पीछे हटना होता ।

मगर की शक्ति गहरे जल में,
लेकिन भूमि पर वश ना चलता,
रथ की गति भूमि पर दिखती,
जल में लेकिन जहाज ही चलता ।

कर्म अनुकूल उचित स्थल चुनने पर,
निर्भयता से कर्म करना ही काफी,
उचित स्थल पर अल्प सेना वाला भी,
बहुत सेना वाले राजा पर भारी ।

दुर्ग और साधनों के अभाव में भी,
घेरना कठिन राजा को उसके घर में,
विकट वीरों को दहलाने वाला हाथी भी,
कीचड़ में हो जाता गीदड़ों के वश में ।

51. सुविचारित चुनाव

गुण, धन, स्त्री और प्राण मोह,
मंत्री की परख इन चार कसौटी पर,
कुलीन, निर्दोष और डरे अपयश से,
विश्वास किया जा सकता है उस पर ।

शास्त्राध्ययन और निर्दोष होने पर भी,
कठिन अज्ञान का अभाव होना सर्वथा,
गुण और दोषों को जाँच-परखकर,
पहचानों इनमें से किसकी अधिकता ।

मनुष्य की अपनी करनी ही बताती,
उसकी श्रेष्ठता और उसकी नीचता,
परिजन और ममता रहित जो होते,
उनको लज्जित करती नहीं निंदा ।

मोहवश मूढ़ व्यक्ति पर विश्वास,
जैसे निमन्त्रण देना जड़ता को,
अनजान पर बिना परखे विश्वास,
संतप्त करता चिरकाल सन्तति को ।

परखे बिन विश्वास करना ना उचित,
उचित जिम्मेदारी देना विश्वास के बाद,
भरोसा अनजान पर, संदेह विश्वासी पर,
असह्य वेदना ही मिलती इसके बाद ।

52. विचारकर कार्य चुनना

शुभाशुभ को भलीभाँति विचार,
करता पसन्द जो शुभ को ही,
उसे ही नियुक्त करना चाहिए,
राजा करे भृत्य का चुनाव सही ।

प्रयास कर जो आय बढ़ाकर,
सम्पत्ति में वृद्धि कर विपत्ति टाले,
ऐसे ही व्यक्ति में होता सामर्थ्य,
कि सम्पत्ति की रक्षा का बोझ उठाले ।

प्रेम, बुद्धि, एकाग्रता, निर्लोभता,
युक्त हो जो इन चारों गुणों से,
निष्पक्ष निर्णय कर सकेगा वो,
आशा की जा सकती उस से ।

सभी तरह की परख के बाद,
योग्य पाए जाते हैं जो लोग,
उनमें से भी कर्त्तव्य निभाते,
अलग राह पकड़ लेते कुछ लोग ।

समझदारी और बाधाओं से लड़कर,
करता जो अपने कर्त्तव्य से न्याय,
उसे छोड़ मोहवश अन्य की नियुक्ति,
राजा द्वारा ऐसा ना किया जाय ।

कार्य और करनेवाले की क्षमता परख,
निश्चय करे राजा काम कराने का,
साधन और साधक की उपयुक्तता जाँच,
राजा चुनाव करे सही अधिकारी का ।

जान अधिकारी काम करने का,
राजा को सौपना चाहिए काम उसे,
गर काम ना करने दे फिर उसे राजा,
तो भाग्य रूठ जाता उस राजा से ।

नित्य परखना चाहिए राजा को,
अपने भृत्यों का काम-काज,
भ्रष्ट ना होते जब तक अधिकारी,
बना रहता राजा का राज ।

53. बन्धुओं से लगाव

दरिद्रता में भी किसी को छोड़े बिना,
पुराना सम्बन्ध बनाए रखते बन्धु,
निरन्तर सौभाग्य की प्राप्ति होती,
जिसके सगे होते अटूट-प्रेमी बन्धु ।

तट रहित फैले तालाब सा जीवन,
जिनका बन्धुओं से स्नेह ना होता,
धनवान के धन पाने का प्रयोजन,
बन्धुओं को संग जोड़े रखना होता ।

उदार और मृदु-भाषी व्यक्ति,
सगे-सम्बन्धियों से घिरा रहता,
और अगर वो निष्क्रोधी भी हो तो,
सबका अतिशय स्नेहपात्र बन रहता ।

कौए के समान बन्धुओं को पुकार,
उनके साथ जो मिल-बाँट कर खाता,
अक्षुण्ण रहता उसका सौभाग्य,
दिनोंदिन उसका यश फैलता जाता ।

योग्यतानुसार लोगों संग व्यवहार,
लाभान्वित करता है राजा को,
किसी कारण से जो दूर हो जाते,
उसके हटने पर निकट आ जाते वो ।

बिन कारण जो गया छोड़ कर,
लौटकर आए जब किसी कारण से,
पूरी करे राजा कामना उसकी,
सावधानी से परख रखे साथ उसे ।

54. अविस्मरण

आनन्द जनित विस्मरण के कारण,
घटी असावधानी जो हानि पहुँचाती,
असीम क्रोध से होने वाली हानि से,
कहीं अधिक कष्ट वो हानि पहुँचाती ।

निरन्तर दारिद्र्य से बुद्धि कुण्ठित,
यश का ह्रास वैसे ही विस्मरण से,
शास्त्रों का यह निश्चित मत है,
कोई संशय नहीं, हानि विस्मरण से ।

भयग्रस्तों के लिए प्रयोजनहीन दुर्ग,
वैसे ही सुअवसर विस्मरणशील को,
बिसर गयी जिन्हें रक्षा की बात,
विपत्ति आने पर विलाप करेंगे वो ।

सावधान रह निरन्तर चिन्तन,
गुण नहीं कोई और इसके समान,
सदा सतर्क रह जो कार्य करता,
कुछ असाध्य ना उसके लिए जान ।

शास्त्र प्रसंशित कार्य श्रद्धा से,
जो ना करता समयानुसार,
पछताता फिर जन्म-जन्मों तक,
सुअवसर नहीं मिलता बार-बार ।

हर्षातिरेक में विचार करे उनका,
नष्ट हुए जो गफलत के कारण,
इच्छित वस्तु अवश्य मिलेगी,
उसके सतत चिन्तन के कारण ।

55. सुशासन

बिना किसी लाभ या लालच के,
करना न्याय निष्पक्षता के साथ,
उचित नीति यही राजा के लिए,
फैसला करे सोच-विचार के बाद ।

ज्यों वर्षा के सहारे चलता संसार,
प्रजा के लिए सुशासन का सहारा,
वेद और धर्म के पालन के लिए,
ब्राह्मणों को भी राजा ही सहारा ।

पूजा जाता वो सम्राट जग द्वारा,
करता प्रजा का पालन जो प्रेम से,
नीति और धर्म से शासित राज्य,
हरा-भरा रहता वर्षा और उपज से ।

शस्त्रों के बल पर नहीं वरन,
राजदण्ड के बल चलता राज्य,
संसार की रक्षा राजा के द्वारा,
पर नीति बचाती उसका राज्य ।

ना प्रजा को सुलभ ना मृदु भाषी,
ना जो प्रजा की व्यथा सुनता,
निश्चित उस राजा का विनाश,
जो प्रजा को यों पीड़ित करता ।

प्रजा की सुरक्षा, दोषी को दण्ड,
राजा को शोभता, ये नहीं कलंक,
खेत में निराई करने के जैसा,
राजा का घातियों को मृत्यु-दण्ड ।

56. कुशासन

प्रजा को पीड़ा, शासन अन्याय से,
हत्यारों से भी क्रूर होता वो राजा,
प्रजा से अनुचित धन वसूलता जो,
डाकू सा ही लूटेरा होता वो राजा ।

न्यायानुसार जो राज्य ना करता,
तदानुसार ही क्षीण होता जाएगा,
परिणाम ना सोच, नीतिविहीन राज,
प्रजा और धन उसका लुट जाएगा ।

दुखी प्रजा का निरन्तर अश्रु प्रवाह,
राजा का समूल नाश करनेवाली सेना,
सुशासन ही राजा को स्थायी यश देता,
सूखे सा, राजा का सदय ना होना ।

धन दुःख देता अन्यायी के राज में,
मेघ उस राज्य में जल ना बरसाते,
कम कर देती गायें दूध देना,
ब्राहमण वेद और धर्म भूल जाते ।

57. भयभीत ना करना

अपराध के भविष्य में निवारण हेतु,
दोषी को समुचित दण्ड देता राजा,
भारी दण्ड का भय दिखलाकर,
राज्यश्री की रक्षा करता राजा ।

भयभीत करने वाले क्रूर राजा का,
निश्चित शीघ्र ही नाश हो जाना,
आयु कम हो जाती उस राजा की,
प्रजा ने जिसे बस क्रूर ही जाना ।

ना ही सुलभ, ना प्रियदर्शन जिसके,
जिसका धन मानों भूतों के वश हो,
कटु भाषी और कठोर हृदय वाला,
विपुल वैभव भी शीघ्र खो देता वो ।

कठोर वचन और दण्ड में निर्दयता,
शत्रु के आगे कमजोर करता राजा को,
अकारण ही स्वजनों पर दोष मढना,
श्री नष्ट कर संकट में डालता उसको ।

दुर्ग बिना शत्रु से युद्ध में,
निश्चित सा हारना राजा का,
क्रूर राजा मूर्ख मंत्री को रखे,
उनसे बढ़कर ना भार पृथ्वी का ।

58. दयार्द्रता

दया रुपी सौन्दर्य के बल पर ही,
टिका हुआ है यह सारा संसार,
करुणापूर्ण सांसारिक व्यवहार बिन,
जीना तो बस पृथ्वी पर भार ।

तान से जिसकी मिले ना लय,
लगता नहीं मधुर वह गान,
ऐसे ही जिनसे करुणा ना झलके,
उन नेत्रों का होना, ना होना जान ।

दया बिन क्या प्रयोजन नेत्रों का,
नेत्रों का तो भूषण है करुणा,
चेहरे पर हों जैसे मात्र घाव से,
जिन आँखों से झलके ना करुणा ।

भूमि पर खड़े पेड़ मात्र से,
जिनकी आँखें दयार्द्रता से रहित,
नेत्रवाले वे कैसे कहे जा सकते,
वे तो ना होते करुणा से रहित ।

न्याय करे पर करुणा के साथ,
जग पर होता उनका अधिकार,
अपकारी को भी सहन कर लेना,
श्रेष्ठ लोगों का होता व्यवहार ।

गरल मिलाते खुद देखकर भी,
कर लेते शान्ति से उसका पान,
जो चाहते हैं इस जग में रहे,
सबके हृदय में करुणा का भान ।

59. गुप्तचर

गुप्तचर और प्रतिष्ठित नीतिशास्त्र,
ये दोनों राजा के दो नेत्रों से,
जो घटित हो राज्य में रोजाना,
गुप्तचरों द्वारा जाने वो शीघ्र उसे ।

गुप्तचरों द्वारा पता लगाकर,
जो राजा वस्तु स्थिति ना जानता,
गफलत में रहता वो राजा,
उसका विजयपथ अवरुद्ध हो जाता,

भृत्य, शत्रु, मित्र, परिजन सब पर,
नजर रखना काम गुप्तचर का,
रूप धारण, निर्भीक, मर्म छिपाना,
जरूरी होना उसमें इन गुणों का ।

पहुँच जाए बैरागी बन जहाँ चाहे,
और पता लगा ले शत्रु के मर्म का,
पर जाहिर ना होने दे मंशा अपनी,
गुप्तचर की यह कर्म-कुशलता ।

करे मर्म की वो पूरी जानकारी,
और जो जाना उसमें रहे ना शंका,
फिर भी राजा के लिए उचित है,
दूसरे गुप्तचर द्वारा कर ले पक्का ।

जाने नही एक दूजे को गुप्तचर,
तीन चर एक सा कहें, तब विश्वास,
प्रकट सम्मान उनका ना उचित,
तभी भेद गुप्त रहने की आस ।

60. उत्साह

उत्साह से होती धन की कीमत,
वरना काम की होती ना सम्पत्ति,
धन तो आता-जाता रहता है,
उत्साह ही होती स्थायी सम्पत्ति ।

उत्साह का थामे रहते जो दामन,
वो संकट से विचलित नहीं होते,
सम्पन्नता स्वयं उनका पता पूछती,
जो कभी हतोत्साहित नहीं होते ।

जल की गहराई जितनी लम्बी,
कमल-पुष्प की नाल होती,
वैसे ही मनुष्य उतना बड़ा होता,
दृढ़ता जितनी उत्साह में होती ।

मन में विचार सदा महान हों,
चाहे सफलता मिले ना मिले,
जैसे बाणों से हाथी नहीं डिगता,
संकट में उत्साही व्यक्ति ना हिले ।

सबल और दानी होने का गौरव,
उत्साहहीनों को नसीब नहीं होता,
विशालकाय हाथी भी नत हो जाता,
जब उत्साही व्याघ्र सामने होता ।

उत्साह ही होता सच्ची शक्ति,
सम्भव सब कुछ जिसके बल पर,
वृक्ष होने और मनुष्य होने में,
उत्साह ही तो बस होता अन्तर ।

61. आलस्यहीनता

कुटुम्ब नामक अक्षय दीपक,
बुझ जाता आलस्य के कारण,
जिसको चाह कुटुम्ब फले-फूले,
आलस्य का कभी करें ना वरण ।

आलसी व्यक्ति के विनाश से पहले,
उसके परिवार का पतन हो रहता,
दोष प्रवेश कर कुल नाश कर देते,
गर वो विशेष प्रयत्न ना करता ।

देरी, आलस्य, विस्मरण और निद्रा,
डूबने वाले की प्रिय नाव से,
अकूत धन जो अनायास मिल जाए,
विशेष लाभ उसे होता ना उससे ।

उपहास और फटकार के बनते पात्र,
आलस्यवश जो प्रयत्न ना करते,
राजा भी आल्स्यग्रस्त होने से,
शत्रु के अधीन दास हो रहते ।

आलस्य त्याग प्रयत्न करने से,
कुटुम्ब के दोष स्वत: मिट जाते,
वामन-ग्रहित विशाल क्षेत्र सा राज्य,
चुस्त सम्राट सहज ही पा जाते ।

62. उद्दमशीलता

असाध्य मानकर किसी कार्य को,
प्रयास ना करना उचित ना होता,
सतत प्रयत्न जो करता रहता,
यथोचित मान पाने का पात्र होता ।

अपने कर्त्तव्य में प्रयत्नशील ना होना,
त्याग देना चाहिए इस स्वभाव को,
छोड़ देता है उसे भी संसार,
छोड़ देता है अधूरा जो काम को ।

अवस्थित होता परोपकार रुपी गौरव,
प्रयास रुपी श्रेष्ठ स्वभाव में,
जो प्रयत्न ना करता उसका परोपकार,
कायर का भांजना तलवार व्यर्थ में ।

निष्काम भाव से कर्त्तव्य का पालन,
परिजनों का भार स्तम्भ बन सहना,
प्रयास से होती श्री सम्पत्ति में वृद्धि,
प्रयास ना करना, निर्धन हो रहना ।

घोर दरिद्रता का आश्रय आलस्य,
प्रयास में होता वास लक्ष्मी का,
वश सौभाग्य पर किसी का नहीं,
पर प्रयत्न ना करना दोष स्वयं का ।

चाहे भाग्य किसी को कुछ ना दे,
पर परिश्रम का फल तो मिलता,
निरन्तर अथक प्रयास करने वालों से,
परास्त भाग्य को भी होना पड़ता ।

63. अधीर ना होना

दुःख आ पड़े तो अधीर ना होना,
हिम्मत से मुस्कुरा सामना करना,
दुःख से लड़ने का इससे बढ़कर,
उपाय ना कोई और समझना ।

बाढ़ सा भी हो जो दुःख का प्रवाह,
बुद्धिमानों के समक्ष टिक ना पाता,
उनके मन में विचार मात्र से ही,
उस प्रवाह का स्रोत सूख जाता ।

दुःख से दुखी ना होने वाले,
कर देते हैं दुखी दुःख को,
ज्यों गहरे कीचड़ में से वृषभ,
निकाल ले जाता गाड़ी को ।

दुःख के आगे जो डटे रहते,
भाग जाता दुःख दूर उनसे,
अति हर्षित ना लाभ मिलने पर,
कैसे विचलित होंगे वो हानि से?

तन को दुःख का गढ़ मानकर,
बुद्धिमान कष्ट में अधीर ना होते,
सुख में प्रसन्न, दुःख में दुखी,
बुद्धिमान इससे ऊपर उठे होते ।

दुःख को सहज रूप में लेते,
और सुख सा ही लगे वो जिन्हें,
सर्वत्र प्रशंसित होते हैं वो,
शत्रु भी मान देता है उन्हें ।

2. सामन्त

64. अमात्य

साधन, समय, तरीका और कार्य,
इनका ज्ञान जो रखे वो अमात्य,
निर्भयता, कुलीनता, नीति, दृढ़ता,
रक्षा करने में प्रवीण हो अमात्य ।

शत्रुओं में परस्पर विरोध करवा दे,
मित्रों से मैत्री, मिलाप पृथक हुओं से,
गूढ़ समझ, विश्लेषण, कार्य-सिद्धता,
पक्की सलाह आदि मिले अमात्य से ।

राजधर्म सम्मत मंत्रणा की क्षमता,
और कार्य सिद्ध करने के उपाय,
अमात्य के ये गुण विशेष होते,
राजा को राज करने में सहाय ।

शास्त्र ज्ञान और तीक्ष्ण बुद्धि हो,
तो कोई समस्या सम्मुख नहीं टिकती,
शास्त्र सम्मत विधि ज्ञात हो तो भी,
लोकरीति अनुसार खोजे युक्ति ।

उपदेश भुला दे और अज्ञानी हो राजा,
पर सही सलाह देनी चाहिए मंत्री को,
सत्तर कोटि शत्रुओं से अधिक हानिकर,
यदि बदनीयत मंत्री राजा के निकट हो ।

उचित क्षमता होती नहीं जिनमें,
छोड़ देते हैं वो काम अधूरा,
यद्दपि शुरू किया सोच विचारकर,
पर होता नहीं कार्य वो पूरा ।

65. वाकपटुता

वाकपटुता का विशेष गुण,
और गुणों से बढ़कर होता,
अति शक्तिशाली होते हैं शब्द,
विकास या विनाश उनसे होता ।

मंत्रमुग्ध कर दें सुनने वाले को,
शत्रु भी करे मित्रता की इच्छा,
करे प्रयोग शब्दों की शक्ति पहचान,
कोई धन या धर्म इससे ना अच्छा ।

अपने वक्तव्य में शब्द हों ऐसे,
जिनकी काट कोई कर ना सके,
प्रियभाषी, औरों का मन्तव्य समझे,
सिद्धान्त होते ये महान लोगों के ।

निर्दोष, निर्भीक, वार्तालाप में प्रवीण,
विरोधी उससे जीत नहीं सकता,
विचारों को सजा, मधुर अभिव्यक्ति,
उसका आदेश कोई टाल नहीं सकता ।

अल्प शब्दों में पूरी अभिव्यक्ति,
कर ना सकें जो वो बहुत बोलते,
शास्त्रों का मर्म समझा ना सकें,
गंधहीन पुष्प-गुच्छ से वे होते ।

66. व्यवहार-शुद्धि

बाहरी सहायता करती धन वृद्धि,
पर कर्म परिशुद्धि देती मन चाहा,
कोई लाभ नहीं ऐसे किसी कर्म से,
यश तो दे पर धर्म-लाभ ना करता ।

चाहते जो अपना उत्तरोत्तर विकास,
त्याग देते यश-नाशकारी कर्म को,
संकट में भी निश्चल ज्ञान वाले,
करते नहीं किसी निंदित कर्म को ।

पश्चाताप जिसका करना पड़े,
करे ना कभी कोई ऐसा व्यवहार,
गर गलती से कर बैठे तो,
फिर दोहराएं ना उसे अगली बार ।

चाहे माता को रहना पड़े भूखा,
सज्जन करें निंदा, ऐसा काम ना हो,
दोषयुक्त तरीके से पाए धन से,
बेहतर यदि घोर दारिद्र्य सहना हो ।

त्याज्य कर्म को जो अपनाता,
सफल होने पर भी दुःख ही पाता,
दूसरों को दुःख दे हासिल किया धन,
खुद को रुलाकर नष्ट हो जाता ।

सद्व्यवहार से संचित की सम्पत्ति,
खोने पर भी फलदायी सिद्ध होगी,
वंचना से अर्जित की गई सम्पत्ति,
कच्चे घड़े में जल भरने सी होगी ।

67. दृढ़ता से कर्म

दृढ़ता से अपने कर्म का पालन,
दर्शित करता दृढ़ता मन की,
और गुणों में दृढ़ता का होना,
करता नहीं बराबरी इसकी ।

नीति-निपुणों का मत निश्चित,
दो मार्ग हैं कर्म की दृढ़ता के,
दोषपूर्ण कर्मों को ना करना,
ना रुष्ट ह्रास होने से कर्म के ।

कौशलता इसी में कि प्रकट ना हो,
कर्म का मर्म, कर्म अन्त होने तक,
पहले ही भेद प्रकट कर देने से,
सहन करना पड़ता कष्ट अन्त तक ।

कहना तो आसान होता सबके लिए,
औरों को उपदेश तुरंत देने लगते लोग,
आसान नहीं खुद उपदेश का पालन,
आचरण में उतारते कम ही लोग ।

यशस्वी व्यक्ति की दृढ़ता की ख्याति,
राजा तक पहुँच सर्व-सम्मानित होगी,
विचारवान दृढ़-प्रतिज्ञ रहें कर्म में तो,
इच्छित वस्तु जैसी चाही प्राप्त होगी ।

छोटा ना समझना, किसी को रूप देख,
रथ के पहिए किल्ली पर टिके होते,
दृढ़ता से लगे रहते कर्म करने में,
वे लोग ही वस्तुत: महान होते ।

कष्टदायक भी हो तो भी दृढ़ता से,
करते रहना चाहिए कल्याणकारी काम,
सम्मान ना करते जो कर्मठता का,
लोक भी ना करता उनका मान ।

68. कर्म करने की रीति

विचार की परिणिति होती निश्चय में,
निश्चय कर शिथिल होना ना उचित,
जहाँ विलम्ब उचित, वहाँ करो विलम्ब,
वरना विलम्ब करना होता ना उचित ।

जहाँ सम्भव हो काम को करो पूरा,
अच्छा नहीं काम को अधूरा छोड़ना,
कार्य और शत्रुता का ज़रा भी शेषांश,
नाशकारी जैसे ज़रा सी अग्नि छोड़ना ।

धन, साधन, समय, कर्म और स्थान,
करना चाहिए इन पर स्पष्ट विचार,
प्रवर्त होना उचित फिर काम में,
अपनी शक्ति और सामर्थ्य अनुसार ।

कर्म को सम्पन्न करने की रीति,
और सम्भावित बाधाओं को विचार,
जुट जाना चाहिए अपने कर्म में,
कर्म के विशिष्ट प्रयोजन को विचार ।

कर्म सुचारू रूप से करने का मार्ग,
उसके मर्मज्ञों की राय पर विचार,
मद-मत्त गज से ज्यों गज को पकड़ते,
एक कार्य से दूसरे कार्य का उपचार ।

मित्रों के हित के कार्य से बढ़कर,
शत्रु को भी अपना मित्र बना लेना,
आगत विपत्ति देख भीरु मंत्री करे,
बलवान शत्रु से संधि की चाहना ।

69. दूत

स्नेहशीलता, कुलीन कुल में जन्म,
और राजा की इच्छानुकूल सदाचरण,
प्रेम, बुद्धि, विवेकपूर्ण वाकपटुता,
उत्तम दूत में आवश्यक ये सब गुण ।

विद्वानों से भी प्रशंसित विद्वता,
बुद्धि, रूप और शास्त्रों में प्रवीणता,
अपने सम्राट का दूत बनने वाले में,
इन सभी गुणों की होती आवश्यकता ।

थोड़े ही लेकिन मधुर शब्दों से,
मोह ले जो मन रिपु-नृप का,
अपने नृप का मन्तव्य सिद्ध हो,
सबसे बड़ा यह उद्देश्य दूत का ।

नीति-निपुण, निडर, प्रभावी वक्ता,
और जो कुशल हाजिर-जवाब हो,
अच्छे दूत का गुण कर्तव्यनिष्ठा,
और देश-काल का ध्यान रखता हो ।

शुद्ध आचरण, सहयोग पा लेना,
धैर्य और सत्यता गुण दूत के,
भूले भी निंदनीय वचन ना बोले,
कार्य सिद्ध करे अपने राजा के ।

चाहे सामने प्राणों का संकट हो,
करना अपने राजा का गुणगान,
रिपु-नरेश को सन्देश दे देना,
कुशल दूत के ये गुण महान ।

70. राजा के समक्ष

अति निकटता ना अधिक नजदीकी,
राजा के साथ यों करना व्यवहार,
जैसे शीत ऋतु में अग्नि तापते,
ताप तपे, अग्नि का प्रतिकार ।

चाहना ना राजा की प्रिय वस्तु की,
दिलवाती सामन्तों को स्थायी सम्पदा,
राजा के मन में संशय जग जाए,
ऐसे गम्भीर दोष का त्याग सर्वथा ।

राजा के समक्ष ना कानाफूसी,
ना औरों की तरफ देख मुस्कुराना,
छिपकर गुप्त बातें ना सुनना,
कहे ना जब तक, प्रश्न ना करना ।

भाव समझकर क्या राजा चाहता,
और समय का करके विचार,
इच्छित विषय को ठीक रीति से,
करना व्यक्त भली प्रकार ।

राजा को प्रिय वो तो ठीक है,
त्याग निरर्थक बातों का अच्छा,
राजा पूछे तो भी ना बताए,
मन में भी ना रखना अच्छा ।

अल्पव्यस्क या बन्धु है कहकर,
राजा को कभी सम्बोधित ना करना,
उचित है अपनी स्थिति अनुसार,
अपनी मर्यादा को बनाए रखना ।

खुद को राजा का प्रिय समझ,
करना ना चाहिए कोई अप्रिय काम,
चिर-परिचित मान दुर्व्यवहार राजा से,
निश्चित ही अति हानिकारक काम ।

71. भावग्राह्यता

बिना कहे हृदय के भाव जान ले,
वे तो इस जग में आभूषण जैसे,
उनमें भी जो संशय रहित हों,
वे तो मानों जग में देवता जैसे ।

मनोभाव जान ले जो मुख निहार,
कुछ भी देकर राजा अपना ले उसे,
चाहे अन्य कोई उसके समान लगे,
लेकिन भावज्ञ होता बेहतर सबसे।

मुखाकृति और भाव-भंगिमा से,
समझ सके ना जो मन की बात,
नेत्रों वाला होने पर भी भला,
उन नेत्रों के होने का क्या लाभ?

जैसे दर्पण दिखलाता प्रतिबिम्ब,
मन का भावातिरेक मुख झलकाता,
क्रोध या हर्ष जो मन के भीतर,
मुख से कौन बेहतर जतलाता?

भावज्ञ के सम्मुख आने मात्र से,
पढ़ सकता है वो राजा का मनोभाव,
नेत्रों को पढ़नेवाला उनकी चंचलता देख,
समझ लेता शत्रु या मित्रता का भाव ।

सूक्ष्म-बुद्धि से खुद को युक्त मानते,
हो जाती आँखों से उनकी पहचान,
आँखों से बड़ा ना कोई माप-दण्ड,
आँखें कर देती सब सत्य बयान ।

72. सभा में व्यवहार

वाकचातुर्य में सिद्धहस्त लोग,
सभा को समझ करें शब्द-व्यवहार,
श्रोता क्या सुनना चाहते समझकर,
कैसे, क्या बोलना, करें विचार ।

सभा का मनतव्य विचारे बिना,
सभा में बोलने का यत्न जो करते,
ना वे भाषण की मर्यादा समझते,
ना उनके शब्द कोई प्रभाव डालते ।

बुद्धिमान के समक्ष बुद्धिमान से,
मूढों के समक्ष बन जाते अज्ञानी,
विद्वानों की सभा में विनम्र हो रहते,
और संयम में रखते अपनी वाणी ।

विद्वत सभा में सदोष व्यवहार,
जैसे कोई गिर पड़े पहाड़ से,
विद्वानों के ज्ञान का प्रकाश,
चमकता प्रशंसा पा विद्वानों से ।

जो स्वयं विषय में सिद्धहस्त हों,
उनके समक्ष अपना ज्ञान बधारना,
ऐसा ही जैसे स्वयं बढ़ती क्यारी में,
बिना आवश्यकता जल को सींचना ।

विद्वत सभा का प्रभावशाली वक्ता,
भूले सा ना बोले मूढों के सामने,
स्वजनों से रहित सभा में भाषण,
अमृत उंडेलना अपवित्र आंगन में ।

73. सभा में निर्भीकता

सशक्त सभा में भयग्रस्त हो,
वाकपटु लड़खड़ाएँ ना बात कहने में,
विद्वानों द्वारा विद्वता का मानना,
जाना जाता वो विद्वान विद्वानों में ।

निडर योद्धा तो होंगे सुलभ अनेक,
विद्वत सभा में निर्भीक मिलेंगे विरले,
विद्वानों को प्रभावित करें ज्ञान से,
और उनसे जो ज्ञान मिले वो ले लें ।

निर्भीकता से प्रत्युत्तर देने के लिए,
तर्कशास्त्र का निपुण अध्ययन करना,
जिनका विद्वत सभा से सरोकार नहीं,
उन्हें सद-ग्रन्थों का भला क्या करना?

सभा-भीरु का ग्रन्थों का पढ़ना,
कायर के हाथ में तलवार हो जैसे,
विद्वत सभा को प्रभावित ना कर सके,
उसका पढ़ना तो ना पढ़ने के जैसे ।

भयभीत होते जो विज्ञ सभा में,
शास्त्र पढ़कर भी अनपढ़ जैसे,
श्रोताओं को प्रभावित ना कर सके,
प्राण होते भी निष्प्राण के जैसे ।

3. दुर्ग

74. राज्य

एक समृद्ध राज्य वो कहलाता,
जिसमें अन्न उपजता हो भरपूर,
विद्वानों की कोई कमी ना हो,
वणिक भी धन के लिए मशहूर ।

जिसका वैभव आकर्षित करता हो,
सब तरह सुखकारी और हरा-भरा,
विनाशकारी कोई तत्व ना हो,
और प्रजा सहयोग करे पूरा-पूरा ।

सह सके आपदा गर कोई आ पड़े,
राजस्व पहुँचता रहे राजकोष में,
ना भुखमरी, ना व्याधि निरन्तर,
और शत्रु का डर ना हो जिसमें ।

अनेक विरोधी संघ-सभाएं ना हों,
ना ही विनाशकारी अन्त:कलह हो,
राजा का अहित करने में लगे रहें,
ऐसे दुखदायी क्रूर भूस्वामी ना हों ।

अंदेशा ना हो शत्रु द्वारा नाश का,
विपत्ति में भी रहे जो फलता-फूलता,
वर्षा, नदी, नाले, पहाड़ों से सज्जित,
और सुदृढ़ दुर्ग हो दूर से दिखता ।

ऐश्वर्य, निरोगता, उर्वरता, प्रसन्नता,
और सुरक्षा होते अलंकार राज्य के,
स्वत: सिद्ध हों ये पाँचों जिसमें,
कहा जाता योग्य वो श्रेष्ठ राज्य के ।

सब कुछ होते हुए भी राज्य में,
राज्य कहलाने योग्य नहीं वो,
राजा और प्रजा के बीच जहाँ,
सौहाद्रपूर्ण सम्बन्ध ना हो ।

75. दुर्ग

आक्रान्ता और आक्रान्त राजा,
दोनों के लिए महत्त्वपूर्ण होता दुर्ग,
स्वच्छ जल, विशाल भूभाग, पर्वत,
और शीतल छायायुक्त होता दुर्ग ।

ऊँचा, चौड़ा, सुदृढ़ और अगम्य,
युक्त हो इन चारो गुणों से दुर्ग,
विशाल पर छोटे रक्षणीय स्थल,
शत्रु को हतोत्साहित करे दुर्ग ।

अजेय हो जो शत्रुओं के लिए,
भीतर सब सुविधाएँ हों जिसमें,
प्रचुर खाद्य और जरूरी सामग्री,
रक्षा हेतु वीर नियुक्त हों उसमें ।

घेरा डालकर या बिना घेरा डाले,
किसी तरह जो जीता ना जा सके,
बल्कि घेरा डालने वाले शत्रुओं पर,
भीतर से ही लड़, विजय दिला सके ।

शत्रु नाश के अमोघ अस्त्र चला,
प्रशंसित हों गढ़ में स्थित रक्षक,
लेकिन यथेष्ट शक्ति-सामर्थ्य बिना,
कैसा भी दुर्ग हो, सब होता व्यर्थ ।

4. खाद्य

76. धन-उपार्जन

किसी को भी सम्मान दिला दे,
यह शक्ति तो केवल धन में,
निर्धन का सब अपमान करते हैं,
धनवान प्रशंसा पाता सब में ।

धनरूपी अविनाशी दीपक का प्रकाश,
मिटा देता अन्धकार तुच्छता का,
न्यायोचित रीति से अर्जित धन,
स्रोत होता धर्म और आनन्द का ।

दया और प्रेम भाव बिन अर्जित,
धन ना होता वो किसी काम का,
लावारिस, राजस्व या जीता हुआ,
वो सारा धन होता राजा का ।

प्रेम जनित दयारुपी शिशु का,
पालन होता धन नामक धाय से,
धन हाथ में रख करना कोई काम,
हाथी को लड़ते देखना, ऊँचे टीले से ।

धन संग्रह करो कि इससे बढ़कर,
शत्रु का गर्व ना कुछ और हरता,
धर्म और इच्छापूर्ति दोनों का आनन्द,
एक साथ न्यायोचित धन से मिलता ।

5. सैन्य

77. सैन्य सौष्ठव

सर्वांग समर्थ, निडर, जयी सेना,
सर्वोत्तम सम्पत्ति होती राजा की,
पराजित या चोटिल होने पर भी,
पुश्तैनी सेना तो राजा संग रहती ।

चूहों के सागर से झुण्ड के,
गरजने से भला क्या हो सकता,
लेकिन सर्पराज की एक फुंफकार,
उससे वह सागर डोल उठता ।

ना क्षतिग्रस्त, ना शत्रु से छली,
पुश्तैनी शौर्य से युक्त सेना उत्तम,
संघटित रह सामना,भीषण प्रहार का
जो कर सकती वो सेना उत्तम ।

शौर्य, सम्मान, आन, विश्वस्तता,
ये चारों सेना के रक्षा स्तम्भ,
चढ़ आई सेना की चाल समझ,
उसके सामने आ डटे अविलम्ब ।

चाहे संहारक शक्ति ना हो,
या शौर्य हो गया हो क्षीण,
फिर भी प्रशंसा पा जाती,
सेना जो प्रदर्शन में प्रवीण ।

क्षीणता, स्थायी घृणा और निर्धनता,
ये नहीं तो विजय निश्चित सेना की,
पर चाहे वीर कितने भी हों सेना में,
सेनानायकों बिना हार निश्चित उसकी ।

78. सेना का शौर्य

मेरे अधिप[8] के सम्मुख सैनिकों,
करो ना हिम्मत तुम आने की,
शिला सी हालत[9] हो चुकी है,
ना जानें अब तक कितनों की ।

भले ही चूक गया हो वार हाथी पर,
पर वो भाला शोभा देता हाथ में,
क्या वो बाण वैसा शोभित होता,
चला जो निरीह शशक पर वन में?

---

[8] अधिप-सम्राट, राजा

[9] शिला सी हालत-अर्थात मेरे राजा के सामने पड़कर, अब तक ना जानें कितने ही जडवत होकर रह गए

शत्रु को युद्ध में भीषण घाव देना,
कहा जाता है उसे पौरुष महान,
पर संकट में उस पर उपकार करना,
उस महान पौरुष से भी महान ।

शत्रु पर भीषण प्रहार कर,
लौट रहा जो नया शस्त्र लाने को,
सीने पर लगे भाले को निकाल,
प्रसन्न होगा शत्रु पर चला उसको ।

क्रुद्ध नेत्र शत्रु को कंपाते,
देख शत्रु को करते हुए प्रहार,
पल भर भी यदि झपक जाएँ,
होगी ना क्या वो उसकी हार?

गुजरे जो दिन बिना घाव के,
वीरों के लिए वो दिन व्यर्थ से,
पैरों में पड़े लौहे के कड़े,
वीरों के लिए होते आभूषण से ।

प्राण जाने का भय ना जिन्हें,
राजा के रोके भी ना रुकते,
कौन उलाहना उन्हें दे सकता,
जो प्राणों को बलि दे देते?

वीरों के प्राण त्याग करने पर,
जब राजा की आँखें भर आएँ,
ऐसी मृत्यु को पाने के लिए,
वीर भला क्यों ना ललचाएँ?

6. मैत्री

79. मित्रता

मैत्री करने से अधिक महान,
कौन कृत्य जग में हो सकता,
और शत्रु से रक्षा करने में,
मैत्री से अधिक क्या हो सकता?

बुद्धिमान मित्रों की मित्रता होती,
बढ़ते हुए द्वितीया के चाँद सी,
लेकिन मूर्ख मित्रों की मित्रता,
ह्रास को बढ़ते पूनम के चाँद सी ।

जिस प्रकार गहन अध्ययन के साथ,
अध्ययन में रूचि और बढती जाती,
सज्जनों के बार बार मिलने से,
मित्रता भी वैसे ही बढ़ती जाती ।

हँस कर खुश होने के लिए नहीं,
वरन मित्रता होती बरजने के लिए,
अति करने से रोकना मित्र को,
सबसे अधिक जरूरी मित्र के लिए ।

साथ उठना-बैठना, मिलना-जुलना,
इससे जरूरी एक-दूजे को समझना,
केवल मुख का खिलना नहीं काफी,
आवश्यक है मित्रों का दिल खिलना ।

कुमार्ग से हटा सुमार्ग पर लाना,
मित्र का मित्र के प्रति कर्त्तव्य,
दुःख में उसका दुःख बाँट लेना,
उसके साथ खड़े रहना कर्त्तव्य ।

जैसे खुलते वस्त्र को संभालने,
हाथ तुरंत ही वहाँ पर चले जाते,
वैसे ही विपत्ति में सहायता करने,
मित्र मित्र के पास दौड़े चले जाते ।

श्रेष्ठ मित्रता का महत्वपूर्ण गुण,
विलग नहीं होते मुसीबत में मित्र,
हम एक-दूसरे की सहायता करते,
ऐसा भी किसी को कहते नहीं मित्र ।

80. मित्रता की परख

मित्र बनाकर तोडना मित्रता को,
या मित्रता करना बिन परखे,
दोनों अनुचित, पर मर्मान्तक होता,
मित्र बनाना बिना बार-बार परखे ।

गुण, कुल और दोष विचार कर,
उचित करना मित्रता किसी से,
लज्जित दोषों पर और कुलीन हो,
किसी भी कीमत पर मित्रता उससे ।

समझाकर, झिडककर या रुलाकर,
पर मित्र को बचा ले भटकने से,
ऐसे मित्र मुश्किल से मिलते हैं,
अति श्रेष्ठ मित्रता निभाना उनसे ।

विपत्ति में ही परख होती मित्र की,
यह एक गुण है विपत्ति का,
सोचने समझने का मौक़ा देती,
ज्ञान करा देती भले-बुरे का ।

अच्छी नहीं मूर्खों से मित्रता,
बेहतर है उनसे दूर ही रहना,
निराशाजनक विचार ना अच्छे,
अच्छा भागने वाले मित्र त्यागना ।

ऐसे मित्र जो छोड़ गए विपत्ति में,
उनका ख्याल दग्ध करता मन को,
बेहतर है मित्रता सज्जन लोगों की,
और तुरंत त्यागना कपटी मित्रों को ।

81. घनिष्ठ मैत्री

घनिष्ठता से प्राप्त अधिकारवश,
मित्र द्वारा किया गया कार्य,
घनिष्ट मित्रता की पहचान यही,
मित्र द्वारा हो बेहिचक स्वीकार्य ।

क्या लाभ ऐसी घनिष्ठ मित्रता का,
कि मित्र का किया खुद का ना माने,
बिन पूछे उसका हक से किया काम,
घनिष्ठ मित्र उसे इच्छानुकूल ही माने ।

हो जाए यदि कुछ अनिष्टकारी भी,
अज्ञान या उसका हक माने,
चिर मैत्री की मर्यादा में बन्धे,
उसे मित्रता पर आँच ना माने ।

घनिष्ठ मित्र स्नेह परम्परा का,
यों करते हैं परस्पर निर्वाह,
मित्र कर दे यदि कोई हानि भी,
तो कम ना होती परस्पर चाह ।

चिरकाल से उसे जानने वाला,
बुराई ना सुनता औरों से मित्र की,
वो दिन मित्रता की कसौटी जानता,
जब मित्र में झलक दिखे त्रुटि की ।

अक्षुण्ण जो रखते घनिष्ठ मित्रता,
प्रशंसित होते हैं वो जग में,
शत्रु भी उनके कायल हो जाते,
स्नेह अडिग रहता जिनका मित्र में ।

82. निकृष्ट मित्रता

चाहे कितनी भी प्रिय लगती हो,
अशिष्ट व्यक्ति से यदि मित्रता,
बेहतर है वो क्षीण पड़ जाए,
उस मित्रता में आए ना दृढ़ता ।

क्या लाभ या हानि ऐसी मित्रता से,
स्वार्थसिद्धि आधार हो जिसका,
धन-गाहक गणिका और लुटेरे,
उनका सा आचरण बस उनका ।

सवार गिरा भागे मूढ़ अश्व सम,
मित्र से तो बेहतर एकाकी रहना,
रक्षा की बजाय छोड़ दे असहाय,
उससे अच्छा बिना मित्र रहना ।

मूर्ख की अति घनिष्ट मित्रता से,
बेहतर है शत्रुता बुद्धिमान की,
व्यर्थ ही हँसने वाले मित्र की अपेक्षा,
अधिक श्रेष्ठ घृणा शत्रुओं की ।

साध्य हो पर असाध्य बतायें,
धीरे से उनसे दूरी बना लेना अच्छा,
कहते कुछ और, करते कुछ और,
उनसे मित्रता का स्वाद कड़वा ।

मुख पर तो जो करें प्रशंसा,
पर हँसी उड़ाएँ भरी सभा में,
रखना ना मित्रता उनसे जरा भी,
कपट भरा होता उनके मन में ।

83. झूठी मित्रता

मित्रवत दिखते पर स्नेहशुन्य,
रहते अवसर की वो ताक में,
गणिकाओं सा अस्थिर मन वाले,
संकोच ना करते घात करने में ।

शत्रु-स्व्भाव जिनका होता है,
चाहे कितने वे शास्त्र पढ़ लें,
मन उनका निर्मल नहीं होता,
सम्भव नहीं स्वभाव बदल लें ।

मुख पर तो मुस्कान हो जिनके,
पर छल से भरा हुआ हो मन,
विश्वास ना उनकी किसी बात का,
जिनके मन से मिलता ना मन ।

शत्रु चाहे करे मित्र सी बातें,
उनकी व्यर्थता हो जाती प्रकट,
धनुष के झुकने के जैसे ही,
उनकी विनम्रता में होता कपट ।

शत्रु के जुड़े हुए हाथों में,
शस्त्र छिपा हुआ हो सकता,
उसी तरह उसके अश्रुओं के पीछे,
कोई षड्यंत्र छिपा हो सकता ।

ऊपर से प्रदर्शन मैत्री भाव का,
पर भीतर मन में पलता खोट,
ऐसे को उसी तरह से हँसकर,
वक्त आने पर पहुँचाना चोट ।

बनाना पड़े गर शत्रु को मित्र,
तो बनाना नहीं चाहिए मन से,
मुख पर तो रखना मुस्कान,
पर सावधान रहना भीतर से ।

84. मूढ़ता

करना ग्रहण जो हानिप्रद हो,
और छोड़ देना लाभप्रद को,
मूढ़ व्यक्ति की निश्चित पहचान,
जिसमें यह बड़ा दुर्गुण हो ।

निषिद्ध कार्यों में मन का लगना,
मूढ़ताओं में सबसे बड़ी मूढ़ता,
मूढ़ों के आचरण में झलकते,
निर्विचार, निर्लज्जता और निर्दयता ।

जिसे साधना चाहिए, नहीं साधते,
करते मूढ़ लापरवाही भरा व्यवहार,
अध्ययन, मनन, अध्यापन करते,
उसके अनुरूप ना करते व्यवहार ।

एक ही जन्म में सात जन्म की,
नर्क यातना का कर लेते प्रबन्ध,
ज्ञान बिन काम अधूरा ही छोड़कर,
दण्ड मिलने का कर लेते प्रबन्ध ।

यदि अकूत धन-दौलत मिल जाए,
परिजन भूखे, अन्य करेंगे भोग,
पीकर मस्ती में रहने वाले सा,
मूढ़ को मिली वस्तु का उपयोग ।

मूढ़ों के साथ मित्रता भंग होना,
पीड़ा नहीं बल्कि प्रसन्नता का प्रसंग,
विद्वत सभा में मूढ़ का प्रवेश,
जैसे शयन करना मलिन पैरों संग ।

85. तुच्छ बुद्धि

बुद्धिहीनता सबसे बड़ा अभाव,
धन का अभाव ना होता अभाव,
बुद्धिहीन का प्रसन्न हो दान देना,
पाने वाले के पुण्य का प्रभाव ।

अपने ही पाँव पर कुल्हाड़ी मारता,
शत्रु बुद्धिहीन को इतना ना सताते,
बुद्धिहीनता वह विक्षिप्तता होती,
जिसमें वे खुद को बुद्धिमान मानते ।

अजाने विषय पर ज्ञान बधारना,
जाने हुए पर भी शंकित करता,
नग्नता को ढापना भी व्यर्थ सा,
गर अपने दोष मिटा नहीं सकता ।

अति गूढ़ विषयों को प्रकट कर,
मूढ़ स्वयं हानि करते अपनी,
ना खुद समझते ना सलाह मानते,
अभिशाप बना लेते जिंदगी अपनी ।

बुद्धिहीन को समझाने का प्रयत्न,
खुद को नासमझ दिखाने जैसा,
और बुद्धिहीन का स्वयं अपने को,
समझदार सा समझने जैसा ।

जग जिसका अस्तित्व मानता,
अस्वीकार करना अस्तित्व उसका,
ऐसी तुच्छ बुद्धिवाला व्यक्ति,
प्रेत समान ही जाएगा समझा ।

86. वैमनस्यता

वह ज्वर जो सब जीवों में,
पैदा करता विरोध भावना,
सज्जन उसे घृणा कहते हैं,
बुरी होती यह बैर भावना ।

विलगाव के कारण मनमुटाव,
घृणावश अहित करने से अच्छा,
घृणाभाव यदि दिल से मिट जाय,
अमिट, अक्षुण्ण यश मिलता ।

प्रसन्नता पाने के लिए आवश्यक,
दुःख का मूल घृणा मिट जाना,
विजय कौन पा सकता उस पर,
घृणा को जिसने शत्रु सम माना ।

वैमनस्य वृद्धि से जो होते हर्षित,
नाकामी और नाश समीप ही पाते,
देख नहीं पाते वे विजयदायी सत्य,
घृणा-आधारित न्याय जो करते ।

वैमनस्यता से दूरी देती सम्मद्धि,
और विरोध वृद्धि से होता नाश,
सौभाग्य में विरोध नहीं दिखता,
उसका बढ़ा रूप, जब निकट नाश ।

वैमनस्य के मकड़जाल में फँसना,
अनायास आमंत्रित करना दुखों को,
और सौहार्द को गले से लगाना,
निमंत्रित करता श्रेष्ठ सद्गुणों को ।

87. शत्रु की पात्रता

बलवानों से अच्छी ना शत्रुता,
पर कमजोर से कभी ना दबना,
निराश्रय, निर्बल, स्नेहशुन्य जो,
मुश्किल उसका शत्रु से बचना ।

डरपोक, मूढ़, नामिलनसार, कंजूस,
शत्रु के लिए होता आसान शिकार,
क्रोधी और अस्थिर मति वाले की,
सदा सर्वत्र सबसे होती है हार ।

अनभिज्ञ होता जो नीतिशास्त्र से,
और विधिवत जो करता ना काम,
दुराचारी जो निंदा से नहीं डरता,
शत्रु के लिए वो सुख का धाम ।

अकारण ही जिसे क्रोध आ जाता,
और कामनाओं से रहता ग्रस्त,
शत्रु के लिए आनन्ददायी शत्रु वो,
सुगमता से वो हो जाता पस्त ।

प्रारम्भ करके किसी काम को,
जो करता कुछ उसके प्रतिकूल,
चाहे कुछ देकर ही करनी पड़े,
ऐसे व्यक्ति की शत्रुता कुबूल ।

गुणविहीन और दोषों से युक्त,
निराश्रय, मूढ़ और डरपोक हो जो,
शत्रु को क्या डर ऐसे शत्रु का,
उसके लिए तो सुखकारी होता है वो ।

अनपढ़ से शत्रुता कर जिसने,
विजय ना पायी हो आसानी से,
कैसे उसे यश-लाभ मिल सकता,
चूक गया ऐसा अवसर जिससे?

88. शत्रु का बल-बोध

शत्रुता जैसा असभ्य व्यवहार,
करना ना कभी किसी के साथ,
धनुषरुपी हलधारी[10] से तो ठीक है,
कठिन शब्दरूपी धनुर्धारी[11] के साथ ।

अकेले अनेकों से दुश्मनी पालना,
अत्यन्त मन्द बुद्धिवालों का काम,
शत्रुता को भी मित्रता में बदलना,
श्रेष्ठ व्यक्तियों का महान काम ।

---

[10] धनुषरुपी हलधारी-किसान

[11] शब्दरूपी धनुर्धारी-ज्ञानी, विद्वान

दो शत्रुओं के बीच फँसने पर,
बना लेना चाहिए मित्र एक को,
चाहे पता ना हो पहले से कुछ,
संकटकाल शत्रु-मित्र का प्रश्न ना हो ।

उचित जताना ना दुःख अपना,
ना शत्रु पर अपनी निर्बलता,
शत्रु का अहं वो नष्ट कर देते,
सबल हो जो कर लेते सुरक्षा ।

कांटेदार वृक्ष उगते ही काट डालो,
बढ़ने पर काटता वो उसी हाथ को,
शत्रु का दर्प जो नष्ट नहीं कर पाते,
मृतकों सा होता उनका जीवन तो ।

89. अन्त:वैर

छाया और जल भी यदि,
हानिप्रद हों तो वे होते हैं बुरे,
वैसे ही स्वजन दुखदायी हों,
तो वे बन्धु भी होते हैं बुरे ।

डरो ना शत्रु दिखने वाले शत्रु से,
डर तो बन्धु का जो शत्रु सा हो,
सतर्क रह कभी सुस्त ना पड़ो,
मिट्टी-छेदक सा काट देगा वो ।

विकृत मन में गुप्त वैर भाव,
सम्बन्धों में दूरी पैदा कर देता,
परिजनों में परस्पर अन्त:वैर,
सम्पूर्ण परिवार नष्ट कर देता ।

अपने ही कुटुम्ब में भीतरी कलह,
फिर कठिन है विनाश से बचना,
पिटारे और ढक्कन से एक दिखते,
पर कठिन उनका एक हो रहना ।

रेती से घिसते लौह खण्ड सा,
छीजता चला जाता वह परिवार,
तिल सा नगण्य होने पर भी,
अन्त:वैर नष्ट कर देता परिवार ।

परस्पर विरोधी भाव वालों का,
एक साथ एक छत के नीचे रहना,
ऐसा ही है जैसे किसी झोपडी में,
एक साथ विषैले नाग संग रहना ।

90. बड़ों का अपमान

सक्षमों की क्षमता का सत्कार,
स्वरक्षण का सर्वोत्तम उपचार,
बड़े लोगों का तिरस्कार करना,
खुद अपने साथ करना अपकार ।

जो अपने विनाश का हो इच्छुक,
वैर पाल ले उन लोगों से,
जो अपनी पर आ जाएँ तो,
पीछे ना हटते नाश करने से ।

सम्भव है बच निकलना अग्नि से,
बड़ों का अपमान कर कठिन बचना,
सज्जन व्यक्तियों का कोप-भाजन बन,
धन-सम्पदा, ऐश्वर्य का क्या करना?

जो महान हैं अचल पर्वत से,
निश्चय कर लें गर नाश करने का,
समूल नष्ट हो जाएगा परिवार,
ज्यों धरती पर मिट्टी का घरौंदा ।

उत्तम व्रतधारी के क्रोध से,
मिट जाते इन्द्र जैसे सम्राट भी,
यति-तपी जो रुष्ट हो जाएँ,
बचा नहीं सकता फिर कोई भी ।

91. स्त्री-अधीनता

स्त्री पर आसक्त लोगों का,
कठिन है उत्तम गुण ग्रहण करना,
कर्त्तव्य पथ के पथगामियों का,
उचित नहीं आसक्त हो रहना ।

स्त्री लोलुप व्यक्ति की समृद्धि,
लज्जास्पद बन लज्जित करेगी उसको,
गृहिणी के वश होकर रहना,
सज्जनों में हास्यप्रद बनाएगी उसको ।

पत्नी से भयभीत, आनन्द से वंचित,
पाता ना प्रशंसा अपने कर्म-कौशल की,
सज्जनों के लिए हितकारी करने में,
रहती फ़िक्र उसे पत्नी के कोप की ।

देवों के समान रहने पर भी,
डरते जो बाँस-सम स्त्री स्कन्धों से,
मान नहीं उनका कुछ रहता,
लोगों के बीच रहते अमानी से ।

स्त्री के अधीन निर्लज्ज से तो,
श्रेष्ठ लज्जावान स्त्री होती,
ना वे मित्र की कमियाँ पूरी करते,
ना ही पालना होती धर्म की ।

धन, धर्म या अन्यान्य शुभ कर्म,
अपेक्षित नहीं होते आसक्त लोगों से,
विचारशील और दृढ़ हृदय व्यक्ति,
दूर ही रहते आसक्तिरुप अज्ञान से ।

92. गणिका

प्रेम नहीं अपितु धन की इच्छा से,
बोले गए मधुर बोल दुखद ही होते,
लाभ हेतु मीठा बोलने वाली स्त्री से,
सज्जन सोच-समझ अलग हो रहते ।

धन-लोलुप स्त्रियों का झूठा आलिंगन,
अन्धकार में शव से लिपटने जैसा,
धनान्ध स्त्रियों के तुच्छ सौन्दर्य से,
दूर ही रहते परमार्थ के ज्ञाता ।

सहज बुद्धि और विशिष्ट ज्ञान वाले,
सहज सुलभ स्त्री से दूर ही रहते,
नृत्य-गान प्रवीण गणिकाओं के,
प्रेम-पाश में वे कभी ना बंधते ।

दृढ़ संकल्प जो लोग ना होते,
वे ही करेंगे आलिंगन उनका,
जो दिखावे का प्रेम करती हैं,
पर चित्त अन्य में होता जिनका ।

विश्वासघाती स्त्री का प्रेम-व्यवहार,
तप-भंग करने आई अप्सरा जैसा,
विवेकहीन जन ही फँसते उसमें,
जिसका परिणाम विनाश ही होता ।

गणिका का कोमल कन्धा होता,
पतितों के लिए द्वार नरक का,
चरित्रहीन स्त्री, मद्य और जुआ,
आसरा लक्ष्मी के ठुकराए जन का ।

93. मद्य निषेध

डरते नहीं शत्रु मद्य प्रेमियों से,
ना सज्जनों से वे पाते सम्मान,
खो देते वे यश को भी अपने,
माँ भी ना रखती ममता का मान ।

भयंकर दोष मद्यपान का जिनमें,
मुँह मोड़ लेती शालीनता उनसे,
धन देते अपना होश खोने को,
अपने रचे कर्मजाल में फँसते ।

जैसे सोया व्यक्ति नहीं होता,
कुछ अलग मरे हुए व्यक्ति से,
वैसे ही मद्यपान करने वाले,
होते विष पीने वाले मृतकों से ।

छिपी ना रहती लत पीने की,
भेद खुलने पर सारा जग हँसता,
'मैंने कभी ना पी' वे कहना छोड़ दे,
क्योंकि पीते ही सच प्रकट हो रहता ।

लती को मद्य छोड़ने का उपदेश,
दीपक ले जल में डूबे हुए को ढूँढना,
चढ़ी ना हो तब मत्त की दशा देख,
'मैं भी ऐसा हूँ', उसको ना सूझना ।

94. जुआ

चाहे जुए में जीत सकता हो,
फिर भी बेहतर जुआ ना खेलना,
जैसे चारे को देख मछली का,
बेहतर काँटा ना निगले सोचना ।

जुए में एक जीतकर सौ हारना,
क्या साधन हो सकता जीने का,
जीत की आस से पासे फेंकते रहना,
दूजे को दे देना सारी सम्पदा ।

अनेक बाधाओं को खड़ा कर,
जुआ कर देता यश का नाश,
उससा नहीं और कोई व्यसन,
दारिद्रय जो खींच लाता पास ।

पासा, जुआ-घर, द्युत कौशलता,
इनका अभिमान निर्धन कर छोड़ता,
भूखे मरते जुए रुपी दुर्भाग्यग्रस्त,
परलोक में भी दुःख भोगना पड़ता ।

जुआघर में समय व्यर्थ करना,
नष्ट कर देता पैतृक सम्पत्ति,
चरित्र हर लेता, झूठ बुलवाता,
निष्करुण बना, न्यौतता विपत्ति ।

वस्त्र, धन, भोजन, यश और विद्या,
पास भी फटकते नहीं जुआरी के,
खोते-खोते धन लालसा बढती जाती,
जीने का मोह, दुःख सहते-सहते ।

95. औषधि

वात, पित्त और कफ ये तीन हैं,
जिनके घटने, बढ़ने से होते रोग,
भोजन और श्रम में सामंजस्य,
रखता व्यक्ति को सदा निरोग ।

पहले खाया भोजन पचने पर,
संयमित भोजन रखता निरोग,
दीर्घजीवी होने का यह उपाय,
भूख में उपयुक्त भोजन का भोग ।

उचित मात्रा में भोजन ग्रहण,
खूब भूख तब उपयुक्त पदार्थ,
प्राणों का फिर कोई भय नहीं,
स्वस्थ रहने का यही मार्ग ।

नियमित भोजन रखता स्वस्थ,
अधिक खाने से होती बीमारी,
कितनी जरूरत खाने की ना जान,
लोग स्वयं बुला लेते बीमारी ।

रोग का ठीक से पता लगा,
और उसके कारण को समझकर,
अनुकूल उपचार करना चाहिए,
उसके निग्रह का उपाय खोजकर ।

निपुण वैध के लिए आवश्यक,
रोगी की आयु का करे विचार,
रोग की तीव्रता और मौसम देख,
उपयुक्त औषध से करे उपचार ।

रोगी, वैध, औषधि और तीमारदार,
रोग उपचार के ये आयाम चार,
इन चारों का समुचित विश्लेषण,
वैधक-शास्त्र का सम्पूर्ण विस्तार ।

7. वंश

96. कुलीनता

औचित्य और लज्जा का संयोग,
मिलता केवल कुलीन लोगों में,
सदाचार, सत्यता और संयम का,
स्थायी वास होता उनके चरित्र में ।

प्रसन्न मुद्रा, उपकार, मृदु वचन,
और औरों की निंदा ना करना,
स्वभाविक गुण ये कुलीन लोगों के,
समृद्धि में भी क्षुद्र कर्म ना करना ।

तंग-हाथ में भी पुश्तैनी कुलीन,
टलते ना अपने सदाचरण से,
कुल का नाम कलंकित ना हो,
करते ना अनुचित या छल से ।

कुलीन लोगों के दोष दिखते हैं,
ज्यों चन्द्रमा में स्पष्ट कलंक से,
कुलीन कुल में स्नेहशून्यता होना,
कुल कलंकित कर देता सन्देह से ।

जैसे अंकुर दर्शाता मिट्टी के गुण,
वाणी दर्शाती कुल वक्ता का,
शुभ के लिए लज्जाशील आचरण,
यश के लिए व्यवहार विनय का ।

97. सम्मान

व्यक्तित्व में जो दाग लगा दे,
त्याग सर्वथा उचित है उसका,
चाहे कैसी भी विपदा सहनी पड़े,
अनुचित करना ऐसे कर्म का ।

सुयश और सम्मान के इच्छुक,
करेंगे कभी ना कोई निकृष्ट काम,
चाहे कितना भी यश मिलता हो,
कलंकित ना करेंगे कुल का नाम ।

सज्जनों के लिए उचित यही है,
समृद्धि में करें विनम्र व्यवहार,
और कभी दैन्य स्थिति हो जाए,
सिर ऊँचा रख करें व्यवहार ।

सिर से गिरे बाल सी हालत,
होती सम्मान से गिरे व्यक्ति की,
तिल से क्षुद्र कर्म के कारण,
कलंकित हो जाते महान लोग भी ।

निन्दकों की परवाह क्यों करना,
यश मिलता ना परमार्थ ही सधता,
अच्छा है साधारण सा मर जाना,
निन्दक के सहारे जीना ना जचता ।

आत्म-सम्मान जब नष्ट हो रहा हो,
तन बचाने से क्या लाभ हो सकता,
मत्यु तो एक दिन आनी ही आनी,
खोया सम्मान ना पाया जा सकता ।

सम्मान नष्ट तो प्राण दे देते,
वे तो होते 'कवरिमान' मृग से,
जो अपने प्राण तुरंत तज देता,
एक बाल भी गिरे जो तन से ।

प्राण तजें पर मान ना जाए,
ऐसे मानी मरने से ना डरते,
लोक प्रशंसा कर पूजता उनको,
तिरस्कार जो सहन ना करते ।

98. महानता

साहस और उमंग जीवन में,
करते तन में संचार प्राणों का,
महत्वाकांक्षा हीन जीवन जीना,
कर देता है नाश जीवन का ।

एक समान जन्मते सब जग में,
कर्म ही बनाता किसी को महान,
गिरता ना कोई निम्न आचरण बिन,
श्रेष्ठ आचरण बिन बनता ना महान ।

जिसके हृदय में एक ही व्यक्ति,
उस चरित्रवान स्त्री के समान,
जिसका आचरण मर्यादित होता,
कहा जाता वही व्यक्ति महान ।

उचित रीति से असाधारण कार्य,
कर दिखाते बस महान व्यक्ति ही,
उनकी महानता का सप्रेम आदर,
औछे और अनभिज्ञ कभी करते नहीं ।

आचरणहीन औछे लोगों द्वारा,
महान कार्य यदि कोई हो जाए,
अहंकार ही बस उनमें भरता,
मुश्किल कि वे श्रेष्ठ कर्म अपनाएँ ।

विनम्रता महान लोगों का आभूषण,
धारण जिसे किए रहते वे सदा,
पर औछे लोग महान मान खुद को,
गर्दन को अकड़ाए रखते सदा ।

अहंकार रहित होती महानता,
तुच्छता में सीमा ना अहंकार की,
श्रेष्ठ लोग औरों के दोष छिपाते,
औछों की तुच्छता, गिनते गलती ।

99. सर्वगुण सम्पन्नता

सभी शुभ कर्म कर्त्तव्य समान होते,
गुणी और कर्त्तव्यशील व्यक्ति को,
महापुरुष देखते गुणों की श्रेष्ठता,
महत्त्व ना देते बाहरी रूप को ।

प्रेम, शील, सहयोग, दयार्द्रता, सत्यता,
ये पाँच स्तम्भ हैं गुण-रुपी आलय के,
उत्तम तप किसी की हिंसा ना करना,
सर्वोपरि गुण दोष देखना ना किसी के ।

बलवानों का आभूषण विनयशीलता,
शत्रु का मन जीता जाता जिससे,
छोटों से भी हार मान लेना,
गुणागार जीतते सब जिससे ।

दुखदाता को सुख ना पहुँचाया,
तो क्या मूल्य रहा सद्‌गुणों का,
सद्‌गुणों से भरा जिसका खजाना,
क्यों खेद करे वो निर्धनता का?

गुणों के समुद्र से माने जाने वाले,
प्रलय में भी अपना स्वभाव ना तजते,
उनकी गुण-गरिमा में क्षति का भार,
सब जगवासी मिल उठा नहीं सकते ।

100. शिष्टाचार

मिलनसारिता और सबका सत्कार,
अंग हैं दोनों उत्तम व्यवहार के,
उत्तम कुल में जन्म और स्नेहशीलता,
ये दोनों अंग हैं शिष्टाचार के ।

तन की साम्यता, मेल ना मन का,
मन का मेल तो होता गुणों से,
न्याय और उपकार जनित मेल,
प्रशंसित होता सब लोगों से ।

हास्य में भी रुचती नहीं निंदा,
शत्रुता में भी करना शिष्ट व्यवहार,
शिष्टाचार के बल जगत टिका है,
वरना मिट्‌टी में मिल जाता संसार ।

तीव्र बुद्‌धि पर शिष्टाचार विहीन,
उनका होना तो बस होना वृक्ष सा,
मैत्री तोड़ जो हानिप्रद हो जाते,
अशिष्टता उनसे भी, गौरव हरता ।

रहते ना प्रसन्न मन अशिष्ट लोग,
दिन में भी उन्हें दिखता अंधियारा,
उनकी सम्पत्ति उस दूषित बर्तन सी,
जिसमें रखा दूध फट जाता सारा ।

101. निष्फल-सम्पत्ति

प्रचुर सम्पत्ति एकत्र कर घर में,
उपभोग किया ना जिसने उसका,
धन के नाते मृतक सा वो तो,
कुछ भी वो धन से पा ना सका ।

सम्पत्ति से सब पाया जा सकता,
यह मान, बिना दिये पकड़े रखना,
ऐसे मोहग्रस्त व्यक्ति का निश्चित,
ना इहलोक, ना परमार्थ ही सधना ।

लगा रहता जो धन संग्रह में,
करता ना तनिक चिंता यश की,
भार समान बन धरती पर रहता,
बस करता रहता चिंता धन की ।

प्रेम ना करता जिससे कोई,
होगा विदा जब वो जग से,
क्या छोड़ जाने की वो सोचता,
कि याद करें उसके बाद उसे?

ना देता किसी को, ना खुद भोगता,
उसकी अकूत सम्पत्ति होती व्यर्थ सी,
योग्य व्यक्ति को भी जो कुछ ना दे,
वो सम्पत्ति के लिए व्याधि खुद ही ।

निर्धन को ना देने वाले का धन,
एकाकी रह वृद्ध होती सुन्दरी सा,
अप्रिय जन के आश्रित धन,
विष वृक्ष में लगे हुए फल सा ।

कंजूसी, कष्ट सह या अधर्म से,
एकत्रित किया धन दूसरे ही भोगते,
दानी लोगों की क्षणिक दरिद्रता,
कभी खाली बादल ज्यों नही बरसते ।

102. लज्जाशीलता

अनुचित कर्म पर लज्जित होना,
वही वास्तव में लज्जा का होना,
कुलांगनाओं की स्वभाविक लज्जा,
वो तो स्त्री सुलभ लज्जा का होना ।

समान होते अन्न, वस्त्रादि सबको,
लज्जावान होना सज्जनों की श्रेष्ठता,
सभी जीव धारण करते हैं शरीर,
लज्जा उनके गुणों की श्रेष्ठता ।

लज्जाशीलता गुणियों का आभूषण,
उसके बिना गम्भीरता व्याधि जैसे,
खुद या औरों की निंदा से लज्जित,
वे तो लज्जा के आश्रय के जैसे ।

चाहते नहीं भोग संसार का सज्जन,
बिना लज्जा की सुरक्षा मेड़ लगाए,
लज्जाशील दे देते प्राण लज्जा से,
लज्जा ना त्यागते कि प्राण बच जाएँ ।

होना चाहिए पर लज्जित नहीं होते,
धर्म लज्जित हो उन्हें त्याग देता,
सिद्धान्त से गिरना, कुल पर भारी,
पर निर्लज्ज का तो कुछ नहीं बचता ।

जिनके ह्रदय लज्जा रहित होते,
चैतन्यता की न्यूनता होती उनमें,
रस्सी से संचालित कठपुतली से वे,
प्राण होने का भ्रम होता जिसमें ।

103. परिवार पालन

कुल पालन का दृढ़ निश्चय,
इसमें निहित है गौरव महान,
सतत प्रयत्न और गम्भीर मति,
ज्यों गाड़ी के दो पहिए गतिमान ।

कुल पालन में दृढ़चित्त व्यक्ति की,
तत्पर हो देव भी सहायता करते,
ऐसे व्यक्ति के सब सद प्रयास,
अपने आप ही सफल हो रहते ।

सद गृहस्थ को सारा संसार,
अपना बन्धु मानकर घेरे रहेगा,
परिवार का पालक, संरक्षक हो रहे,
उसकी तो सारा जग प्रशंसा करेगा ।

शूरवीर पर ज्यों भार युद्ध का,
कुल का भार सामर्थ्यशाली पर,
आलस्य या कोई काल विशेष नहीं,
ना रुकते मान-हानि विचार कर ।

क्या उसका तन बस कष्ट सहने को,
आने ना दे जो कोई दुःख कुल पर,
जिस कुल में कोई संरक्षक नहीं होता,
गिर जाता कुठार से पेड़ सा कटकर ।

104. कृषि

चाहे करे कुछ भी सारा जग,
पर कृषि पर ही संसार टिका,
चाहे कितनी भी हों मुसीबतें,
सबसे श्रेष्ठ है कार्य कृषि का ।

संसार के लिए किल्ली सा कृषक,
जिसके सहारे यह सारा जग घूमता,
अन्य भोजन के लिए औरों पर निर्भर,
कृषक अन्न उपजा सबका पेट भरता ।

अपने राजा का भला चाहने वाले,
चाहते उसकी छत्र-छाया का विस्तार,
अपने हाथों से कमाकर खाने वाले,
औरों की भूख का करते उपचार ।

यदि खेती करने वाला किसान,
बैठ जाए रख हाथ पर हाथ,
उपजेगा ना कुछ अन्न खेत में,
त्यागी-सन्यासी भी मलेंगे हाथ ।

मिट्टी को सुखा ले यदि इतना,
कि सेर भर मिट्टी पाव रह जाए,
फिर क्या जरूरत रहेगी खाद की,
भरपूर फसल उसी मिट्टी से पाए ।

जोतने से बेहतर है खाद डालना,
निराई बाद सुरक्षा जरूरी सिंचाई से,
देखे ना यदि भूस्वामी खुद चलकर,
रूठी पत्नी सी रूठेगी भूमि उससे ।

'अपने हाथ कुछ नहीं' जो कहते,
और बैठे रहते निठ्ठले होकर,
भूमि रूपी यह सुन्दर स्त्री,
मन-ही-मन हँसेगी उसे देखकर ।

105. दरिद्रता

दरिद्रता सा ना कुछ और दुखदायी,
इहलोक और परलोक दोनों बिगाड़ती,
उत्कंठ इच्छा जिसे कहते दरिद्रता,
कुलाचरण और यश दोनों हर लेती ।

कुलीन लोगों में भी निर्धनता,
हीन वचनों का दोष पैदा कर देती,
अनेक कठिनाइयाँ निर्धनता के साथ,
बिन बुलाए अपने आप आ लेती ।

प्रभावित ना करते निर्धन के शब्द,
चाहे कितने भी वो सारगर्भित हों,
माता भी पहचानने से मना कर देती,
धर्म हीन दारिद्रयग्रस्त व्यक्ति को ।

दारिद्रय की विपदा जो सहता आ रहा,
उसकी चिंता सताती रहती निर्धन को,
अग्नि में भी नींद का आना सम्भव,
पर कोई सो सकता ना निर्धन हो ।

जिस दरिद्र के पास कुछ नहीं,
बस शरीर ही लेता रहता श्वास,
नमक और सूखी रोटी के लिए भी,
पड़ोसी से लगाए रहता वो आस ।

106. याचना

याचना करनी तो समर्थ व्यक्ति से,
गर वो इनकार करे तो दोष उसका,
याचना करना भी दे सकता आनन्द,
गर देने वाले को कष्ट ना उसका ।

एक शान होती उससे माँगने में,
खुले हृदय और जो देवे मान से,
स्वप्न में भी जो ना नहीं करते,
उनसे माँगना जैसे लेना स्वयं से ।

कभी मना ना कर याचक को देते,
उनके होने से याचक करते याचना,
पर उनके सम्मुख मात्र खड़े होने से,
मिट जाती कुछ पाने की चाहना ।

शालीन और सहृदय देने वाले को देख,
प्रफ्फुलित हो उठता मन याचक का,
याचक बिना यह शीतल विशाल जग,
कठपुतली सा सूत्र से चलता लगता ।

याचना करने वाले याचकों बिना,
कैसे यश के पात्र होते देने वाले,
ना मिले तो क्रोध ना करे याचक,
क्रोध अपनी दीनता ही पर कर ले ।

107. याचना करने से डरना

प्रसन्न मन सब देने वाले से भी,
कुछ ना माँगना अत्यंत श्रेयस्कर,
गर सृष्टा ने विधि रची याचना की,
तो सृष्टा नष्ट हो मारे-मारे फिरकर ।

दारिद्रय दुःख दूर करे माँगकर,
अज्ञान ना इससे बढ़कर हो सकता,
कोई राह ना हो फिर भी ना माँगे,
सद्गुण ना इससे बढ़कर हो सकता ।

मेहनत से कमायी सूखी रोटी भी,
स्वादिष्ट होती अमृत समान,
चाहे गाय के लिए जल माँगना हो,
उसमें भी निंदा और अपमान ।

गर जरूरत भी पड़े माँगने की,
याचक ना माँगे कृपण लोगों से,
अनाश्रित नाव याचना की टूट जाती,
टकराकर उस कठोर चट्टान से ।

माँगने का ख्याल ही काफी है,
याचक का हृदय द्रवित करने को,
लेकिन देनेवाले की ना का ख्याल,
वो तो तोड़ ही देता उसके हृदय को ।

केवल 'नहीं' कहने मात्र से ही,
निकल जाते है याचक के प्राण,
फिर जो धन छिपाकर ना कह दे,
कहाँ जाकर छिपेंगे उसके प्राण?

108. नीचता

मनुष्य जैसे ही दिखते हैं नीच,
ऐसी समानता कहीं और ना देखी,
भाग्यवान वे धर्मज्ञ से बढ़कर,
उनमें धर्माधर्म की चिंता ना देखी ।

देवता सम भी होते हैं नीच,
जो करते बस अपनी मनमानी,
अपने से अधिक पतित देखकर,
खुद पर गर्व करते अभिमानी ।

केवल भय का ही भय खाते,
या फिर कुछ पाने की आशा का,
ढोल सरीखे खुद बजकर वे,
रहस्य प्रकट कर देते औरों का ।

मुठ्ठी से जो तोड़ सके ना जबड़ा,
झूठन तक भी उसे ना देते नीच,
सज्जन दौड़ते सहायता करने को,
लेकिन अन्त तक बचना चाहते नीच ।

औरों को खाते-पीते, प्रसन्न देख,
उनके दोष ढूँढने लगते हैं नीच,
विपदा में क्या काम आ सकते,
खुद बिक गुलाम बन जाते नीच ।

3. काम

4. गुप्त प्रेम

109. सौन्दर्य आकर्षण

देवांगना है या सुविशेष मयूरी,
या कुण्डल भूषिता कोई नारी,
विभ्रमित हो रहा है मन मेरा,
कौन है यह कोमल सुकुमारी?

मुझे निहारते देख, निहारना उसका,
मानों सेनायुक्त सुरबाला से संग्राम,
जानता नहीं था जिस यम को मैं,
विशालाक्षी स्त्री-रूप में लिया जान ।

देखने वाले के प्राणों का हरण,
कर लेते हैं जो इसके नेत्र,
इस स्त्री सुलभ सरलता के,
मानों बिल्कुल विपरीत हैं नेत्र ।

यम हैं या नेत्र या मृगिनी,
या तीनों का एक साथ मिश्रण,
गर क्रूर बाण सम भृकुटी ढक ले,
तो मुझे हिलाएँगे ना ये नयन ।

उसके तन पर पड़ा हुआ आँचल,
मदमत्त हाथी के शिरोभूषण सा,
रण में वीरों को भी कंपाता,
मेरा बल पड़ रहा क्षीण सा ।

लज्जावान और युवा हिरणी से दृग,
क्या आवश्यकता इसे गहनों की,
मद्य करता पीने वालों को उन्मत्त,
पर प्रेम के लिए देखना ही काफी ।

110. संकेत बोध

इस तरुणी के कजरारे नयन,
कठिन है पढना उन दोनों को,
रोग भी देते ये ही नयन,
ठीक भी करते ये ही रोग को ।

संकोच सहित चोरी से देखना,
आह्लादित कर देती मन को,
देखकर फिर नजरें झुका लेना,
सिंचित करती प्रेम लता को ।

मैं देखूं, तो नजरें झुका लेती,
ना देखूं, मन्द-मन्द मुस्काती,
मिलाती नहीं नजरों से नजर,
अर्द्ध-मुदित नेत्रों से झाँकती ।

अजनबी सी रुक्षता व्यवहार में,
पर यह तो है बाहरी आवरण,
कठोर नारियल में छिपी गिरी सा,
कटु वचनों से प्रेम-प्रदर्शन ।

स्मित हास मेरे देखने पर,
मुझे राहत देता सा दिखता,
दोनों कुशल अजनबी से भेंटते,
प्रेमियों में ही यह चलन दिखता ।

नयनों से नयन मिलकर,
जान लेते जब दिल की बात,
क्या उपयोग शब्दों का रह जाता,
दिल ने जान ली दिल की बात ।

111. संयोग का आनन्द

रूप, शब्द, रस, गंध और स्पर्श,
ये पाँचों ऐन्द्रिय सुख एक साथ,
चमकती चूड़ियाँ पहनी बाला में,
प्रकाशित हो रहे सब साथ-साथ ।

किसी व्याधि से ग्रस्त होने पर,
व्याधि से अलग होती है औषधि,
लेकिन भूषण-भूषिता ज्वर जनित,
इस व्याधि की बाला स्वयं औषधि ।

कमल-नयन विष्णु का धाम,
क्या अधिक सुमधुर हो सकता,
अपने प्रिय की बाहों में शयन,
जितना प्रिय, प्रिय को हो सकता?

कहाँ से पायी इसने यह ज्वाला,
दूर हो तो जलाती, ठण्डक पास में,
पुष्प-गुच्छित केशों वाली के स्कन्ध,
लगता डूबे हुए हैं अमृत में ।

नवजीवन का संचार करता,
इस बाला का सामीप्य मुझमे,
ज्यों स्वगृह में मेहनत का खाना,
आनन्द देता बाँटकर खाने में ।

दृढ़ता से बन्धना बाहुपाश में,
मधुर लगता दोनों प्रेमियों को,
मान-मनावन और साहचर्य,
प्रेम का प्रतिफल होता दोनों को ।

अधिकाधिक अध्ययन करने से,
ज्ञान होता जो अपने अज्ञान का,
वैसे ही प्रेम करते-करते होता,
ज्ञान प्रेम की गहराई का ।

112. सौन्दर्य की प्रशंसा

मृदुल, भारहीन हे पुष्प अन्निचम !
धन्य है तू और तेरी कोमलता,
पर मेरी प्रिया की बात और है,
तुझसे भी ज्यादा उसमें कोमलता ।

लोग देखते जिन पुष्पों को,
उन सम जान प्रिया के नयनों को,
क्यों भ्रमित होते हो देखकर,
ऐ मेरे हृदय ! फिर तुम उनको?

कोंपल ही तन, मोती ही दाँत,
प्राकृत गंध ही सुगंध जिसकी,
शूल ही अंजन-रजित आँखें है,
बाँस सदृश स्कन्ध वाली की ।

कुमुदिनी इसके नेत्रों को देखकर,
लज्जित हो निहारने लगेगी पृथ्वी को,
डण्ठल सहित धारण किया अन्निचम,
क्या क्षीण कटी सह सकेगी उसको?

चन्द्रमा और उसका मुख समान देख,
नक्षत्र विचलित हो उठे आकाश में,
चन्द्रमा में घट-बढ़ और कलंक भी,
क्या कोई कलंक है इस बाला में?

हे चन्द्र ! अगर तुम कर सको,
इस कन्या के मुख सा आलोक,
तो मेरा प्रेम भी तुम्हें मिलेगा,
और प्रेम करेगा यह सारा लोक ।

हे चन्द्र ! उसकी समानता करो तो,
किसी और की नजर में ना पड़ना,
उसके लिए अन्निचम और हंस-पंख,
मानों कंटकपूर्ण गोखरू पर चलना ।

113. प्रेम की महिमा

उसके श्वेत दाँतों से निसृत तुषार,
मधु मिश्रित क्षीर के समान,
उसका और मेरा स्नेह सम्बन्ध,
जैसे दोनों हों शरीर और प्राण ।

मेरी आँखों में स्थित, हे पुतली !
जरा अपना स्थान रिक्त कर,
अन्य कोई उपयुक्त स्थान नहीं,
मेरी प्रेयसी को रहना यहाँ आकर ।

सुन्दर आभूषणों से अलंकृत प्रिया,
निकट होने पर मेरे जीवन की प्राण,
लेकिन जब मुझसे दूर होती है,
उसके वियोग में निकलते प्राण ।

युद्धरत नेत्रों वाली प्रिया को,
तब ही तो स्मरण कर सकता,
यदि भूल जाऊँ मैं गुण उसके,
प्राणपण जिन्हें भूल ना सकता ।

बस गए हैं नेत्रों में मेरे,
मेरे प्रियतम, मेरे प्राण,
पलक झपकते कष्ट ना होता,
सूक्ष्म इतने वो प्रेम-निधान ।

नेत्रों में बसे जो प्रियतम,
लगता है ये डर मुझको,
काजल अगर लगा लूँ उनमें,
छिप ना जाएँ वो कहीं को ।

बसे हुए हैं हृदय में प्रियतम,
डरती हूँ गर्म वस्तु खाने से,
उस गरम वस्तु का ताप,
सहन ना हो कहीं प्रियतम से?

झपकाती नहीं मैं पलकें भी,
ताकि प्रियतम छिप ना जाएँ,
पर चाहती नहीं पुरवासियों द्वारा,
इस कारण वे हृदयहीन कहें जाएँ ।

प्रियतम तो आ बसे हृदय में,
आनन्द सहित वो वहाँ रहते,
लेकिन पुरवासी देते उलाहना,
तेरे साथ नहीं प्रियतम रहते ।

114. लज्जा का त्याग

प्रियतम के असह्य वियोग ने,
कर दिया है अति विकल मुझे,
बस प्राण तजने के सिवाय अब,
सूझता ना कोई और उपाय मुझे ।

धैर्य और लज्जा रूपी नाव मेरी,
बहा ले चली यह बाढ़ प्रेम की,
माला सी चूड़ियाँ पहनी प्रिया बिन,
कटती नहीं यह घड़ी विरह की ।

आएगी ना नींद आँखों में,
डोलती रहेगी छवि बस उसकी,
ताड़ पत्र के घोड़े[12] पर चढ़,
घोषणा प्राण त्याग की बाकी ।

विरह रूपी सागर में जो,
डूब रही हो बुरी तरह से,
फिर भी सह रही हो पीड़ा,
कौन श्रेष्ठ भला उस स्त्री से?

[12] ताड़ पत्र के घोड़े पर चढ़ आत्म-हत्या की सांकेतिक घोषणा

शीलवान और धैर्यवान को भी,
व्याकुल कर देती विरह व्यथा,
वो क्या जाने उस पीड़ा को,
स्वाद ना जिसका उसने चखा?

115. प्रवाद (अफवाह)

मेरे प्रेम की अफवाह के कारण,
स्थिर हो, टिके हैं मेरे प्राण,
पर मेरा सौभाग्य है यह,
कि बहुतों को नहीं इसका ज्ञान ।

अनजान मेरी प्रेमिका के गुणों से,
मेरे बारे में अफवाह फैलाई नगर ने,
क्या मेरे लिए यह अमूल्य नहीं,
कि मिले बिना उसे पा लिया मैंने?

बढ़ रहा प्रेम प्रवाद के कारण,
वरना गुण छोड़, प्रेम सिकुड़ जाता,
पीते रहने से जैसे बढती मस्ती,
प्रवाद प्रेम का आनन्द बढ़ाता ।

दर्शन प्रिय के बस एक दिन,
लेकिन फ़ैल गयी उसकी बात,
जैसे चाँद को लगना ग्रहण,
हो जाता है सबको ज्ञात ।

प्रवाद रूपी खाद पुरवासियों की,
और क्रोध रूपी जल माता का,
सिंचन और पोषण कर रहे,
प्रेम की इस ज्वर रूपी फसल का ।

प्रवाद से प्रेम-ज्वर शाँत करना,
घी से अग्नि को शाँत करने जैसा,
'डरना मत' कह, लज्जित कर गए,
तो फिर इस प्रवाद से डरना कैसा?

प्रिय लगते इस प्रवाद का,
पुरवासी कर रहे पूरा प्रचार,
अब चाहें तो मेरे प्रियतम,
कर देंगे मुझ पर उपकार ।

2. पातिव्रत्य

116. असह्य वियोग

जाना ना हो तो, हे प्रियतम !
कह सकते हैं यह आप मुझसे,
पर शीघ्र पुन: आने की बात कहें,
प्राण रख सकें तब तक, उससे ।

पहले तो दर्शन मात्र आनंददायक थे,
पर अब वियोग भय दु:ख दे रहा,
वियोग होने को अवश्यसंभावी जान,
प्रिय की बात पर विश्वास डिग रहा ।

वियोग से ना डरे का दृढ़ आश्वासन,
देने वाला गर चला जाए छोडकर,
तब उसे क्या दोष दिया जा सकता,
विश्वास किया जिसने बात पर?

बचाना है मुझे तो वियोग से बचाओ,
असम्भव है वियोग के बाद मिलन,
गर वियोग देने वाले हैं पत्थर-दिल,
तो व्यर्थ सोचना फिर होगा मिलन ।

उतरती ना थीं जो चूड़ियाँ हाथ से,
कैसे घोषित ना करेंगी वियोग,
बन्धु रहित नगर में रहने से अधिक,
दुखद सहना प्रियतम का वियोग ।

क्या विरहाग्नि सी जला सकती,
अग्नि भी बिना छूए किसी को,
असह्य विरह-वेदना को सहकर,
जीवित रहते देखा कितनों को ।

117. विरहिणी का विलाप

मैं यह विरह-वेदना छिपा तो लूँ,
पर अजस्त्र स्रोत सी बढ़ती जाती,
सो छिपाई ना जाती यह वेदना,
प्रिय से कहने में लज्जा आती ।

प्राण रूपी दण्ड के सिरों पर,
विरह और लज्जा हैं लटके हुए,
साधन रूपी नाव नहीं मेरे पास,
विरह-रूपी सागर तरने के लिए ।

प्रेम में भी दु:ख देने वाले,
क्या करेंगे गर शत्रु बन जाएँ,
प्रिय का सामीप्य आनन्द सागर,
दु:ख आगार गर दूर हो जाएँ ।

तैरती रही प्रेम रूपी सागर में,
पर पाया ना छोर मैंने प्रेम का,
औरों को रात दया कर सुला देती
पर अकेली मैं दे रही साथ रात का ।

निष्ठुर प्रियतम की निर्ममता से,
अधिक कठोर ये लम्बी रातें,
हृदय जैसे उनके पास जा सकती,
तो बहाती ना अश्रु मेरी आँखें ।

118. वेदनापूर्ण नेत्र

ये ही नेत्र दिखाकर प्रिय को,
अब क्यों करने लगे विलाप,
विरहाग्नि में ये ही जलाते,
क्यों नहीं सहते फिर ये ताप?

आतुर थे ये नेत्र ही ज्यादा,
बसा लिया प्रियतम को जिन्होने,
क्या ये हँसने योग्य नहीं,
लगे अब खुद ही आँसू बहाने?

असहय विरह-वेदना मुझे देकर,
सूख गए हैं ये नेत्र स्वयं तो,
सागर से भी गहरी मेरी वेदना,
और नींद ना आती इनको भी तो ।

अच्छा ही हुआ ये खुद पीड़ित हैं,
मेरी पीड़ा अब ये भी सहें,
थकते ना थे ये प्रियतम को देखते,
अच्छा है अब शुष्क हो रहें ।

हृदयहीन वे बस बातें करते,
जरा प्रेम नहीं उनके हृदय में,
फिर भी उन्हें पास ना पाकर,
ये नेत्र मेरे बस ढूँढते उन्हें ।

नींद ना आती प्रियतम के बिन,
वो हों तब भी नींद ना आती,
इस होने ना होने में फँसकर,
क्या करें ये आँखें समझ ना पाती ।

ढिंढोरा पीटने वाले मेरे नयन,
जिनके नयन हों इनके समान,
मुश्किल भेद कोई रख पाना,
सब पुरवासी जाएँगे जान ।

119. व्यथा पीला पड़ने की

खुद हामी भर बिछुड़ने की,
किससे कहूँ मैं पीली पड़ रही,
उनका दिया, कर घमण्ड यह रोग,
घेर रहा अब मेरी सारी देही ।

मेरी लज्जा, लावण्य तो वो ले गए,
बदले में दे गए ये रोग मुझे,
उनका ही गुणगान करती रहती हूँ,
तो क्या धोखा है यह रोग मुझे?

प्रियतम की जगह रोग ने ले ली,
उनके जाते ही जिसने मुझे आ घेरा,
बिछुड़ने की प्रतीक्षा में ही था जैसे,
लौ कब मन्द पड़े ताकता है अंधेरा ।

सब कहते हैं मैं पीली पड़ गयी,
कोई कहता नहीं वे छोड़ गए,
मुझे मनाने में उनका दोष नहीं,
तो ठीक ही है मेरा तन पीला रहे ।

मुझे मना कर गए जो प्रियतम,
गर करें ना लोग निंदा उनकी,
तो मेरा पीला पड़ना ही नहीं,
ठीक है होना चर्चा इसकी ।

120. विरहाधिक्य

प्रियतम भी जिन्हें समान प्रेम करते,
बीज रहित प्रेम-फल मिलना सा उन्हें,
उचित समय पर मेघ-वर्षा होने सा,
वर्षा का ही सहारा प्राणों को जिन्हें ।

प्रेमपात्र है जो प्रियतम की,
चाहे प्रियतम दूर हो उससे,
कर सकती गर्व जीवन पर,
फिर मिलेगा वह प्रेम उसे ।

प्रियतम का प्रेम ना प्राप्त जिसे,
औरों से सम्मान किस काम का,
प्रेम जिससे किया, वह प्रेम ना करे,
तो उससे क्या काम बन सकता?

एकतरफा प्यार होता निरानन्द,
दोनों प्रेमियों का समान हो प्यार,
जैसे कावड़िए को कान्धे की तुला में,
सुख देता एक समान पलड़ों का भार ।

एक ही प्रेमी के मन में रहने से,
प्रेम-देवता क्या होंगे ना दुखी,
प्रेमी से प्रतिदान ना पाकर,
उसका दुःख उन्हें करेगा ना दुखी?

सुने बिना मधुर शब्द प्रिय के,
क्या कोई जीवित रह सकती,
कितना कठोर हृदय होगा उसका,
मुझसी जो फिर भी जीती?

प्रेम ना करने पर भी लगती,
प्रशंसा प्रिय की मधुर कानों को,
सागर सी विरह-व्यथा व्यक्त करते,
हे मेरे हृदय ! तुम धन्य हो ।

121. एकाकी-वेदना

जिसका स्मरण भी इतना आनन्ददायी,
वो प्रेम मद्य से भी ज्यादा मधुर होता,
मिट जाता वियोग-दुःख याद करते ही,
जरा भी प्रेम हो, मधुर ही होता ।

छींक आती आती रह गयी,
क्या करने वाले थे मुझे याद,
पर क्या इसके साथ ही उनको,
मेरा स्मरण ही रहा ना याद?

मेरे मन में बसे हुए हैं वो,
पर क्या मैं बसती उनके मन में,
क्या भूलने वाला लज्जित ना होता,
मेरे हृदय में यूँ सदा रहने में?

जीवित हूँ मैं उनका साथ याद कर,
वरना जीने का क्या होता सहारा,
उनकी याद ही हृदय दग्ध कर देती,
भूलूँ तो क्या बचने का सहारा?

रुष्ट ना होते सतत याद से,
क्या मुझ पर यह नहीं उपकार,
'हम अलग नहीं' कहते थे वो,
पर प्रेम विहीनता रही मुझे मार ।

बिछुड़ गए जो रहकर साथ,
पर हृदय से मेरे ना निकले,
हे चाँद ! तू यहीं स्थिर रहना,
जब तक उन्हें ना नेत्र देख लें ।

122. स्वप्नावस्था

प्रियतम का सन्देश ले आया स्वप्न,
कैसे करूँ उसका आतिथ्य सत्कार,
मेरी इच्छानुसार नींद आ जाए तो,
अपनी व्यथा का उनसे करूँ इजहार ।

स्वप्न में सही उनके दर्शन हो जाते,
इसी से टिके हुए हैं मेरे प्राण,
मिलता उन्हें देखने, मिलने का सुख,
जागते में जो नहीं मिलते आन ।

आनन्ददायी था जागते में देखना,
वैसा ही सुखदायी अभी स्वप्न में,
अगर जागने जैसा कुछ ना होता,
तो बिछुड़ती नहीं कभी उनसे मैं ।

प्रेम ना करते जो जागने में,
क्यों तंग करते मुझे आ स्वप्न में,
गले लगाते नींद में प्रियतम,
जागने पर झट भाग आते हृदय में ।

निष्ठुर प्रेमी को कोसेंगी वे ही,
मिलते ना प्रियतम जिन्हें स्वप्न में,
'मुझे छोड़ गए' कहने वाली क्या,
दर्शन ना करती उनके स्वप्न में?

123. सान्ध्य-वेदना

हे धन्य सन्ध्या ! क्या यह तू ही है,
या वियोगिनियों की प्राण भक्षिणी,
निर्दयी है क्या तेरा साथी भी,
क्या तू भी है मुझ जैसी ही दुखिनी?

ओस लिए कंपाती, धुंधलाती सन्ध्या,
मुझे पीड़ित करने बढती आ रही,
फाँसीघर की तरफ जल्लाद की तरह,
प्रिय के अभाव में वैसे ही आ रही ।

क्या भला किया मैंने प्रात:काल का,
और सन्ध्या का क्या किया अपकार,
प्रियतम के संग रहते किया ना,
महसूस संध्या का दुखद व्यवहार ।

कली सी क्रमश: विकसित होकर,
विरहांग्नि सन्ध्या तक बड़ी बढ़ जाती,
ग्वाले की मुरली सन्ध्या की दूती बन,
मुझ पर संहारक शस्त्र सा चलाती ।

भ्रमित करती ढलती सन्ध्या के साथ,
पुरवासी भी भ्रमित हो होंगे दुखी,
धन कमाने गए प्रियतम को याद कर,
मेरे प्राण कर रहे तैयारी कूच की ।

124. सौन्दर्य-ह्रास

विदेश गए प्रियतम की याद कर,
मेरे बेनूर नयन फूलों से शर्माए,
रोती हुई आँखें पीली पड़ गई,
प्रिय के वियोग में कन्धे झुक आए ।

फिसलती जा रही चूड़ियाँ हाथ से,
स्कन्ध प्रियतम की निर्ममता जताते,
इन्हें देख प्रियतम को निष्ठुर कहना,
मेरे दु:ख को और भी बढ़ाते ।

सिकुड़े हुए इन स्कन्धों की,
विवशता जता ऐ मेरे ह्रदय तुम,
क्या मेरे निष्ठुर प्रियतम से,
होना चाहते हो गौरवान्वित तुम?

आलिंगन रत हाथों को जो,
किया तनिक सा ही ढीला,
सुन्दर चूड़ियों से भूषित उसका,
चेहरा तुरन्त पड़ गया पीला ।

जरा सा शीतल वायु का प्रवेश,
पीला कर गया उसकी आँखों को,
और प्रेमिका का पीला माथा,
पीला कर गया प्रियतम को ।

125. आत्म-संलाप

इस प्रेम रोग की कोई औषध,
हे मेरे हृदय ! विचार कर बताओ,
प्रेम नहीं करते वो प्रियतम,
पर तुम अज्ञानी से दुखी, समझाओ ।

रहते तो हो तुम मेरे भीतर,
पर रात-दिन स्मरण उनका,
उन्हें तो तेरा कोई स्मरण नहीं,
जिनके कारण है ये व्यथा ।

हे हृदय ! ले जाओ ये नेत्र भी साथ,
उन्हें ना देख ये व्याकुल रहते,
वे प्रेम ना करते क्या इस कारण,
उन्हें निर्मम समझ भुला सकते?

मिथ्या है तेरा क्रोध मैं जानती,
उन्हें देखते ही तू पिघल जाता,
दोनों को एक साथ सह नहीं सकती,
या प्रेम त्याग, या त्याग दे लज्जा ।

उन निर्मोही के पीछे दौड़ना,
पागलपन नहीं तेरा तो और है क्या,
मेरे प्रियतम तो तुझमें ही रहते ,
फिर किसके पास खोजता उन्हें, बता?

भूल गए जो मुझे बिल्कुल ही,
गर रखूँ उन्हें मैं दिल में बसाकर,
कैसे भूल पाऊँगी उनकी निष्ठुरता,
रख सकूँगी कैसे गरिमा बचाकर?

126. मान भंग

मन पर लगी लज्जा की चटखनी,
प्रेम की कुठार टिकने नहीं देती,
बड़ी निर्दयी है यह प्रेम-ज्वाला,
नींद आँखों में, पर सोने नहीं देती ।

छिपाए रखना चाहती मैं अपने तक,
पर प्रेम छींक सा छिप ना पाता,
दृढ़-निश्चयी समझी मैं स्वयं को,
पर प्रेम प्रकाश सा प्रकट हो जाता ।

प्रियतम को जाने देने की पीड़ा,
केवल प्रेम करने वाले जानते,
और प्रेमी की ये कैसी विवशता,
दिल से प्रियतम कभी ना जाते ।

प्रियतम करते जब प्रेम प्रकट,
लज्जा का पहरा क्षीण हो जाता,
मेरा स्त्री सुलभ संकोच हर लेते,
निष्ठुर को माया डालना आता ।

रोष प्रकट करने गयी थी मैं तो,
पर उलटे प्रेम प्रकट कर बैठी,
भला मोम से हृदय वाली स्त्री में,
कलह की बात कहीं टिक सकती?

127. उत्कंठा

बाट जोहते-जोहते प्रियतम की,
जाती रही शक्ति नेत्रों की,
हाथों की उंगलियाँ घिस गयी,
लिखते-लिखते दिनों की गिनती ।

विरह-वेदना से व्यथित अगर,
भूल जाऊँ मैं आज उन्हें,
सौन्दर्यहीन हो, झुक जाएँगे कन्धे,
चूड़ियाँ हाथ से लगेंगी फिसलने ।

उत्साह से विजय कामना लिए,
गए जो प्रियतम दूर मुझसे,
कर रही मैं उनकी प्रतीक्षा,
जीवित हूँ दर्शन की आशा से ।

उनके प्रत्यागमन के स्मरण से,
पुलकित होने लगता हृदय मेरा,
आँखे भर जो प्रियतम को देख लूँ,
दूर हो जाएगा सब पीलापन मेरा ।

जी भरकर देख लेने से उन्हें,
मेरा विरह-रोग सब जाता रहेगा,
कलह करूँगी या प्रेम प्रकट,
मन मेरा क्या बस में रहेगा?

सम्राट मेरे लड़ें और जीतें युद्ध में,
घर लौट सत्कार पाऊँगा पत्नी से,
प्रिय के लौटने की प्रतीक्षारत को,
एक-एक दिन लगते सात दिनों से ।

विरहाधिक्य से हृदय विदीर्ण हो,
यदि पत्नी मेरी हो जाती मृत सी,
क्या उपयोग वो सत्कार करे,
या चाहे फिर वो करे कुछ भी?

128. संकेताभिव्यक्ति

प्रयास तो छिपाकर रखने का,
पर निर्बन्ध आँखें बयां कर देती,
सुन्दर नेत्रों और स्कन्धों वाली वो,
स्त्रियोचित सरल स्वभाववश रहती ।

मणि माला में लक्षित धागे सा,
सौन्दर्य प्रिया का भी कुछ कहता,
अधखिली कली की मन्द गन्ध सा,
उसका स्मित हास्य भी कुछ कहता ।

कुछ कर छिप जाना प्रिया का,
कुछ संकेत निहित है इसमें भी,
मेरी हृदय की वेदना मिटा दे,
उसके हाव-भाव में है वो औषधि ।

मुझे प्रेम से गले लगाते,
कुछ वेदना जो उनके हृदय में,
मुझे इस बात का संकेत दे रही,
फिर वियोग का दुःख सहूँगी मैं ।

मुझसे पहले चूड़ियाँ जान गईं,
मेरे प्रियतम के दिल की बात,
नायक इस शीतल घाट का,
उससे फिर वियोग की बात ।

कल ही तो वो बिछुड़े हैं मुझसे,
पर पीलापन छाए दिन सात हो गए,
अपनी बाहें, कन्धे और पाँव देखे,
बस इतने भर संकेत ही उसने दिए ।

नयनों से अपनी विरह-वेदना,
अभिव्यक्त करती वो प्रियतम को,
याचना करती वियोग ना हो,
यह विशेषता विधि ने दी स्त्री को ।

129. आतुरता

स्मरण से सुख, दर्शन से आनन्द,
ये गुण प्रेम में, मदिरा में नहीं,
उभरकर आए ताड़ समान प्रेम तो,
तिल भर कलह भी ठीक नहीं ।

उन्हें देखे बिना रहते नेत्र अशांत,
सुने ना मेरी, चाहते करें मनमानी,
करने गयी थी मैं कलह उनसे,
पर दिल ने मेरी बात ना मानी ।

लिखते हुए नेत्र देखते ना लेखनी,
प्रियतम को देखते, दोष ना दिखते,
पर जब वो होते नहीं सामने,
निर्दोष कृत्य नहीं दिखते उनके ।

भयंकर बाढ़ में कूदने वाला जानता,
पानी का प्रवाह ले जाएगा बहाकर,
ऐसे ही भला क्या लाभ हो सकता,
प्रियतम से झूठमूठ ही कलह कर?

चाहे कितनी लज्जास्पद स्थिति हो,
पियक्कड़ ना छोड़ते मदिरा पीना,
वैसे ही ओ ठगने वाले प्रियतम,
मेरे लिए है तुम्हारे गले लगना ।

पुष्प से भी मृदुल होता है प्रेम,
पर विरले ही जानते सत्यता उसकी,
दिख रहा था आँखों में रोष पर,
मुझसे तीव्र थी प्रेम-भावना उसकी ।

130. रूठा मन

साथ देते देखकर भी,
प्रियतम के हृदय को उनका,
हे मेरे हृदय ! फिर भी तू,
क्यों साथ नहीं मेरा देता?

देखते ही प्रियतम को,
जो प्रेम ना करते हैं तुझसे,
उनकी ओर खिंचा चला जाता,
कि नाराज ना होंगे वो तुझसे ।

भाग्यहीन का मित्र ना कोई,
यह सोच क्या पीछे फिरता है तू,
मान जाता है तू जो रूठकर,
फिर तेरी परवाह कोई करेगा क्यूँ?

दूर हों चाहे पास हों प्रियतम,
मेरे दिल में भय बना ही रहता,
दूर हों तो वो साथ क्यों नहीं,
साथ हों तो भय वियोग का ।

अकेले में याद करने पर उनको,
मेरा दिल निगल जाता है मुझको,
खो बैठी मैं अपनी लज्जाशीलता,
ये अभागा दिल सताता है मुझको ।

उनकी निष्ठुरता की निंदा में,
अपयश अपना ही नजर आता,
मेरा प्राण-प्रिय हृदय इसलिए,
गुण ही उनके याद कराता ।

अपना ही हृदय गर साथ ना दे,
कौन विपत्ति में फिर सहारा देगा,
देख अपनों को ही हाथ खीचंते,
सहज है गैर भी दूर हो रहेगा ।

131. मान

देखें जरा उनका भी तडपना,
कुछ देर तो उनसे रहकर दूर,
नमक सी होती यह झूठी कलह,
ना कम मंजूर, ना ज्यादा मंजूर ।

कुपित प्रिया को ना मनाना,
उसे और दुःख पहुँचाने जैसा,
मुरझाई हुई किसी लता को,
जड़ से ही उखाड़ फेंकने जैसा ।

पद्म-लोचना का यथेष्ट रूठना,
शोभा देता गुणी सुजन को,
मान-मनोवल ही तो बनाता,
और सुगन्धित प्रेम-सुमन को ।

प्रणय-कलह में भय रहता,
कहीं वियोग अधिक ना हो जाए,
वेदना जानने वाला प्रिय ना हों,
तो क्या लाभ दुखी होना पहुँचाए?

ज्यों जल मधुर होता छाया में,
रूठना भी मधुर बस प्रेमियों में,
उसके ही विषय में सोचते रहना,
जतलाता उत्कंठ चाह हृदय में ।

132. मान की सूक्ष्मता

नेत्रों से रसपान कर रहीं सब,
हे दुराचारी ! तुम्हें सामान्य मान,
लगूँगी ना अब मैं गले तुम्हारे,
क्यों करूँ मैं तुम्हारा सम्मान?

बैठी थी जब मैं रूठकर,
प्रियतम ने लेनी चाही छींक,
शायद इस आशा में कि मैं,
दूँगी चिर-जीवन की आशीष?

पहनू पुष्पमाला भी तो कहती,
पहनी दिखाने किसी और को,
कहूँ 'सबसे बढ़' तुम्हें प्रेम करता हूँ,
तो रूठ कहेगी-'और किस, किस को'?

अलग ना होंगे इस जन्म में,
कहने पर नेत्र सजल हो आए,
मन में भय व्याप्त कर गया,
अगले जन्म ना साथ रह पाएँ?

'याद किया तुमको ही', कहने पर,
पूछने लगी, 'क्यों भूल गए थे' हमें,
छींक आने पर बोली, 'बधाई',
कौन इस वक्त याद कर रही तुम्हें?

आती हुई छींक को दबाया तो,
कहने लगी, 'किसे छिपा रहे मुझसे',
उसे प्रेम से मनाने लगा तो बोली,
औरों को भी मनाते होंगे ऐसे?

प्रेम से निहारूँ उसका सौन्दर्य,
तो भी रूठकर कहती है मुझसे,
इतने ध्यान से क्यों देख रहे,
मेरी तुलना करनी है किस से?

133. मान का आनन्द

दोष तो उनका जरा भी नहीं,
फिर भी मैं करती झूठा मान,
प्रेम अधिक बढ़ाएगा यह,
खुद उनसे ही मैं गयी जान ।

यद्दपि पहले जरा मुरझाता,
पर फिर बढ़ता जाता प्रेम,
मान जनित दुःख तो जरा सा,
पर फिर बढ़-बढ़ आता प्रेम ।

पृथ्वी और जल से जो मिले,
भला उन पति-पत्नी के लिए,
मान-मनोवल से बढ़कर क्या,
स्वर्ग भी हो सकता उनके लिए?

यद्दपि प्रेम रस का उत्प्रेरक,
पर चुभता शस्त्र सा, देर तक मान,
कुछ देर का विरह सहन करना,
निर्दोष प्रिय को आनन्द समान ।

भोजन करने से अधिक सुखकारी,
किए हुए भोजन को पचाना,
ऐसे ही प्रेम में अधिक सुखकारी,
रूठे हुए प्रियतम को मनाना ।

जो प्रेम में हारा वो जीत गया,
देखा जा सकता यह पुनर्मिलन में,
क्या गहरा ना होता प्रेम अधिक,
जब प्रियतम फिर आ बसते दिल में?

यूँ ही रूठती रहे प्रिया मेरी,
रातें लम्बी हों, मैं रहूँ मनाता,
प्रेम में आनन्द प्रणय-कलह से,
जिसका आनन्द पुनर्मिलन में आता ।

.....

लेखक की अन्य पुस्तकें:

Yogis in Silence/ISBN 817646199-7

Sufism Beyond Religion/ISBN 817646411-2

Science and Philosophy of Spirituality/ISBN 817646545-3

Saints and Mahatmas of India/ ISBN 935050059-0

Autobiography of a Sufi/ ISBN 817646744-8

The Path of Sufis and Saints/ ISBN 9789350502716

The Golden Chain of Naqshbandi Sufis/ISBN 9789387587144

A Sufi in Police Uniform/ISBN 978-939114514-9

प्रेम प्रवर्तक सूफी/ ISBN 817646422-8

नक्शबंदी सूफी संत/ISBN 9789386223982

बाइबिल सार-जन जन की भाषा में/ISBN 9788189341-61-0

श्रीमद्भगवद्गीता-जन जन की भाषा में

कुरआन सार-जन जन की भाषा में

रामचरितमानस-जन जन की भाषा में

मेरे तो राधा राम

सूफी संत मत/ISBN 817646584-4

101 सूफी कहानियां/ISBN 9789387587687

रामचन्द्र के राम

श्रीकृष्णचरितामृत-जन जन की भाषा में